बालसखा-पुस्तकमाला-पुस्तक २१ वीं।

बालस्मृतिमाला

अर्थात्

अठारह स्मृतियों का पूरा सरल सार

लेखक

[भनमऊ (ज़िला मैनपुरी) निवासी]

पण्डित सुन्दरलाल शर्मा, द्विवेदी

प्रकाशक

इण्डियन प्रेस, प्रयाग

१९११

प्रथमावृत्ति] [मूल्य ।)

भूमिका

शास्त्रों में बतलाया हुआ अपना धर्म कर्म जानना प्रत्येक मनुष्य का परम कर्त्तव्य है। धर्म-कृत्यों को न जान कर और उनको काम में न लाने से मनुष्य अभीष्ट सुख को कभी प्राप्त नहीं हो सकता।

देखा जाता है कि वर्तमान समय में लोगों में नास्तिकता अधिक हो गई है। वे अपने धर्म कर्म को कुछ भी नहीं समझते। इसका कारण एक तो संस्कृत विद्या का प्रचार कम होना है और दूसरा मनुष्यों की कुछ स्वाभाविक प्रवृत्ति ही ऐसी हो गई है। हमको चाहिए कि हम अपने धर्म कर्म को न भूलें। संस्कृत में धर्म-ग्रन्थों को देखना और उन्हें पढ़ सुन कर लाभ उठाना सर्व साधारण के लिए कठिन काम हो गया है। इसलिए मैंने अठारहों स्मृतियों का हिन्दी में सरल सार लिखा है। इस "स्मृतिमाला" में ऐसी बातें लिखी गई हैं जो सर्व साधारण के लिए उपयोगी हैं।

यदि अठारहों स्मृतियों का पूरा अनुवाद किया जाता तो एक बहुत बड़ा पोथा तैयार हो जाता।

आशा है, हिन्दी प्रेमी सज्जन इस पुस्तक को पढ़ कर अधिक लाभ उठायेंगे।

१।६।०९ सुन्दरलाल शर्मा, द्विवेदी।

सूचीपत्र

विषय | पृष्ठ

१—अत्रि-स्मृति १

विषय पृष्ठ

६—यम-स्मृति

७—आपस्तम्ब-स्मृति ४१

८—संवर्त्त-स्मृति ४५

९—कात्यायन-स्मृति ५७

बाल-स्मृतिमाला

१—अत्रिस्मृति

वर्णों के धर्म

एक दिन अत्रि ऋषि के आश्रम में उनके पास बहुत से ऋषि इकट्ठे हो कर आये। सब ऋषियों ने उनको नमस्कार किया और बैठ गये। अत्रि मुनि प्रति दिन अग्निहोत्र किया करते थे। वे सबसे अधिक वेदों के मर्म को जाननेवाले थे और वे सब शास्त्रों की विधि भी अच्छी तरह जानते थे। इसी लिए सब ऋषि लोग उनको अपना पूज्य समझते थे। यहाँ आये हुए सब ऋषियों ने आदरपूर्वक उनसे कहाः—

हे भगवन् ! आप बड़े दूरदर्शी हैं। आप सब कुछ जानते हैं। अतः आप इसको यह बतलाइए कि सब मनुष्यों की भलाई किस तरह हो सकती है ? ऐसा कौन सा उपाय है जिससे सबका कल्याण हो सके ?

अत्रि ऋषि ने उत्तर दिया कि हे ऋषियो ! आप लोग भी वेद-शास्त्रों का अभिप्राय अच्छी तरह समझते हैं। इस पर भी आपने जो प्रश्न मुझसे किया है उसका उत्तर या उपदेश मैं अपने तजरिबा से करूँगा—संसार में जैसा कुछ मैंने देखा या सुना है तदनुसारही आपको उपदेश देता हूँ ।

जो गुरु अपने शिष्य को एक भी अक्षर पढ़ाता है अर्थात् जो केवल एक 'ओम्' मात्र ही पढ़ाता है वह मानों उसको सर्वस्व अर्पण कर देता है। फिर शिष्य के पास ऐसी कोई भी चीज़ नहीं हो सकती जिसको दे कर वह अपने गुरु से उऋण हो सके। और जो शिष्य एक अक्षर मात्र भी पढ़ानेवाले अपने गुरु को जन्म भर गुरु नहीं मानता वह सौ जन्म तक कुत्ते की योनि में जन्म लेता है। यही नहीं किन्तु जो वेद शास्त्र पढ़ कर भी अपने गुरु का अप मान करता है वह मरणानन्तर पशु-योनि पाता है और इक्कीस तरह के नरक भोगता है ।

कोई मनुष्य कहीं भी रहता हो, किसी अवस्था में हो किसी तरह से भी रहता हो, यदि वह अपना कर्म अर्थात् मनुष्य-कर्त्तव्य को पूरा करता है तो संसार उसको प्यार करता है। संसार में उसकी प्रतिष्ठा होती है।

यज्ञ करना, दान देना, साङ्गोपाङ्ग वेद पढ़ना, और तप करना, ये ब्राह्मण के कर्म हैं और दान लेना, वेद शास्त्रों का पढ़ाना और यज्ञादि कराना ये तीन ब्राह्मण की वृत्ति हैं— जीविका हैं। ब्राह्मण की ये तीन ही तरह की जीविकायें— रोजगार—हैं।

यज्ञ करना, दान देना, साङ्गोपाङ्ग वेदों का पढ़ना और तप करना, ये क्षत्रिय के कर्म हैं। हथियारों से जीविका और प्राणियों की रक्षा, ये दो क्षत्रिय की जीविकायें हैं।

दान देना, साङ्गोपाङ्ग वेद पढ़ना, खेती करना, गायों की रक्षा करना, व्यापार करना, और यज्ञ करना; ये वैश्य के कर्म हैं।

खेती, गायों की रक्षा, व्यवहार, तीनों वर्णों की श्रद्धा पूर्वक सेवा और कारीगरी करना, ये शूद्र के कर्म हैं।

अपने अपने कर्मों को करने से ये चारों वर्ण इस लोक में बड़ी प्रतिष्ठा पाते और परलोक में परमगति पाते हैं और जो अपना धर्म छोड़ कर दूसरों का धर्म करते हैं उनको शिक्षा देने वाला राजा स्वर्गलोक में पूजा जाता है।

अपने धर्म में लगा हुआ शूद्र भी स्वर्ग पाता है। दूसरों का धर्म, दूसरे पुरुष की अच्छी रूपवाली स्त्री की तरह, त्यागने योग्य है।

जो शूद्र अपना कर्तव्य कर्म छोड़ कर दूसरे कर्मों में अपना समय व्यतीत करता है वह दण्डनीय होता है।

दान लेना, वेदादि शास्त्रों का पढाना, निषिद्ध वस्तु

ऐसी जरूरी बातें हैं जिनके लिए दत्तक पुत्र का होना कर्त्तव्य तथा धर्मांश में घटित हो सकता है।

जो पिता पैदा हुए पुत्र के मुँह को देख ले तो पुत्र को ऋण सौंप कर पिता पितृ ऋण से छूट जाता है और मोक्ष पाता है।

पुत्र के पैदा होने से ही पिता पितृ-ऋण से अनृणी हो जाता है और उसी दिन शुद्ध हो जाता है क्योंकि वह पुत्र पिता की नरक से रक्षा करता है।

अभक्ष्य भक्षण का प्रायश्चित्त

जहाँ भक्ष्याभक्ष्य का विचार नहीं होता ऐसे शोकयुक्त स्थान के लिए भोजन की शुद्धि कहते हैं, उसको सुनोः—

अभक्ष्य भक्षण कर लेने की शङ्का हो गई हो तो जिसमें खारीपन न हो ऐसे बल, उमर, रूप, अग्नि, कान्ति को बढ़ाने वाली ब्राह्मी औषधि या शङ्खपुष्पी को दूध के साथ तीन दिन तक पीवे।

शराब के बरतन में यदि कोई द्विज बिना जाने जल पी ले तो उसका कैसे प्रायश्चित्त हो और वह किस कर्म के करने से दोष से छूट सकता है?

उत्तर—ढाक तथा बेल के पत्ते, कुश, कमल और गूलर इनके क्वाथ (काढ़ा) के पानी को तीन दिन तक पीने से शुद्ध हो जाता है।

शाम को या सवेरे यदि भूल से सन्ध्या न करे तो महा कर सावधानी से एक हज़ार गायत्री का जप करे।

जिस ब्राह्मण को भेड़िया, कुत्ता और गीदड़ ने काटा हो तो वह सोने के जल से मिले हुए घी को खा कर शुद्ध हो जाता है।

यदि ब्राह्मण बिना जाने ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य का झूठा खा ले तो तीन दिन तक गायत्री का जप करके शुद्ध हो जाता है।

न खाने योग्य अन्न को, स्त्री और शूद्र का झूठा और प्रत्यक्ष में मांस खा कर ब्राह्मण सात दिन तक एक बार जौ के सत्तू पी कर शुद्ध होता है।

न छूने के योग्य को छू कर स्नान ही कर लेने से शुद्ध हो जाता है। और ऐसे का झूठा खा कर छः महीने तक कृच्छ्रव्रत करने से शुद्ध होता है।

जिस घर में कुछ देर तक मुर्दा पड़ा रहा हो उसकी शुद्धि इस तरह होती है कि—मिट्टी के बरतन काम में लावे और दूसरे के बनाये अन्न को खावे। घर से बाहर मुर्दे का निकाल कर घर को गोबर से लिपावे और बाद बकरे से सुँघावे। (बकरे का मुँह शुद्ध माना गया है)

जिन मन्त्रों का देवता ब्रह्मा है ऐसे मन्त्रों के पाठ से शुद्ध किये हुए घर को सोने और कुशाओं के जल द्वारा वेदमन्त्रों से छिड़कने से शुद्ध होता है इसमें कुछ नहीं है।

राजा या दूसरे चाण्डाल आदि ने यदि द्विज को ज़बरदस्ती धर्म से हटा दिया हो तो वह द्विज फिर संस्कार करे और बाद तीन दिन तक कृच्छ्रव्रत करे।

जिसको कुत्ते ने छू लिया हो वह नहाये और कुत्ते का झूठा खा कर कृच्छ्रव्रत करे।

अब सूतक का निर्णय किया जाता है। इससे आगे प्रायश्चित्त (पाप का शोधन) बतलाया जायेगा।

जो ब्राह्मण अग्निहोत्र करने वाला और वेदपाठ करने वाला हो तो वह एक दिन में शुद्ध होता है। जो सिर्फ वेद पाठ ही करता हो वह तीन दिन में शुद्ध होता है और जो दोनों को ही न करता हो तो वह दश दिन में शुद्ध हो जाता है।

व्रत वाला या शास्त्र के अनुसार पवित्र हो और जो अग्निहोत्र करता हो और राजा, इनको सूतक नहीं लगता।

ब्राह्मण दश दिन में, क्षत्रिय बारह दिन में, वैश्य पन्द्रह दिन में और शूद्र एक महीने में शुद्ध हो जाता है।

चौथी पीढ़ी तक दश दिन और पाँचवीं पीढ़ी में छः दिन और छठी पीढ़ी में तीन दिन और सातवीं पीढ़ी में तीन दिन का अशौच होता है।

मरे के सूतक में दासी और अनुलोम (पति से नीचे वर्ण की) स्त्रियों को पति के तुल्य शौच होता है। पति के मरने पर अपनी योनि (जाति के अनुसार) का शौच होता है।

जिस तीसरी पीढ़ी के मनुष्य ने मुर्दे को छुआ हो वह सचैल (मय कपड़े के) स्नान करे और चौथी पीढ़ी का मनुष्य सात घर की भिक्षा का भक्षण करे। यह मुर्दे के सूतक की विधि शास्त्र में बतलाई गई है।

जो पैदा हुआ बालक दश दिन के भीतर ही मर जाये तो जल्दी ही शुद्धि हो जाती है। मरने और पैदा होने के दोनों सूतक नहीं लगते।

ब्रह्मचारी, संन्यासी और सूतक में पहले मन्त्र के जप का अनुष्ठान प्रारम्भ करने वाले की, यज्ञ और विवाह के समय में तत्काल शुद्धि हो जाती है।

विवाह, उत्सव और यज्ञ के समय जो मरने या पैदा होने का सूतक हो जाये तो पहले के सङ्कल्प की हुई चीज़ों के लेने या खाने आदि में दोष नहीं होता।

यदि बच्चा मरा हुआ पैदा हो तो सूतक के शुरू में ही जल का स्पर्श और आचमन करने से शुद्धि हो जाती है परन्तु सूतिका स्त्री को न छूना चाहिए।

दोनों प्रकार के सूतक में पाँचवे दिन क्षत्रिय का और सातवे दिन वैश्य को छूना बुद्धिमानों को जानना चाहिए।

बुद्धिमान् दशवें दिन शूद्र का छुये। पर मरने और पैदा होने दोनों तरह के सूतक में एक महीने में शूद्र की शुद्धि होती है।

रोगी, कंजूस, जो सदा कर्जदार रहा हो, क्रिया-हीन, मूर्ख, विशेष कर जो स्त्री के अधीन रहा हो इनको; और, जुआ आदि बुरे व्यसनों में जिसका धन लग रहा हो, जो सदा पराधीन रहा हो, जो सदा श्राद्ध का भोजन करता रहा हो, इतनों को जीवन पर्यन्त सदा ही सूतक लगा रहता है।

परिवित्ति (जिसने बड़े भाई से पहले अपना विवाह किया हो) को दो कृच्छ्रव्रत, कन्या को एक कृच्छ्रव्रत और कन्या की माता को कृच्छ्र तथा अति कृच्छ्रव्रत और पिता को सांतपन कृच्छ्रव्रत करना चाहिए।

कुबड़ा, बौना, नपुंसक, तोतला, बावला, जन्म से अन्धा, बहरा और गूँगा, ऐसे बड़े भाई से पहले छोटा भाई विवाह कर ले तो कुछ बुराई नहीं।

नपुंसक, दूर परदेश में रहने वाले, पतित, संन्यासी, योगशास्त्र में लगा हुआ, इनके भी परिवेदन में दोष नहीं है।

जिसका पिता, दादा या बड़ा भाई अग्निहोत्र का अधिकारी हो उसको बड़े भाई से पहले विवाह करने में दोष नहीं है।

माता के मर जाने पर, पिता के परदेश चले जाने पर अथवा पिता को पातक लगने पर पिता की जगह पुत्र अग्निहोत्र आदि कर्मों का अधिकारी होता है।

व्रत-विधि

चान्द्रायण व्रत के करने की विधि यह है कि शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से एक ग्रास खाना शुरू करे और प्रति दिन एक एक ग्रास बढ़ाता जावे। जब पौर्णमासी हो जावे तब महीने की शुरू प्रतिपदा से अमावस्या तक बराबर एक एक ग्रास कम करना चाहिए। अमावस्या के दिन बिल्कुल कुछ भी न खाना चाहिए।

पहले तीन दिन तक एक एक ग्रास का भोजन करे और अगले तीन दिन बिल्कुल भोजन न करे, इसको अति कृच्छ्र व्रत कहते हैं। यह अतिकृच्छ्र व्रत ऋषियों ने उन मनुष्यों के प्रायश्चित्त के लिए बतलाया है, जो सदा वेदों को पढ़ते लिखते हैं, जो शरीर से निर्बल हैं और जो सदा पंचमहायज्ञ किया करते हैं।

जो मनुष्य दिन में सूर्य्य को देखता हुआ वायु खाकर रहता है और रात को जल में खड़ा होकर अपना समय बिताता है उसे कोई भी पातक नहीं लगता अर्थात् उसके लिए यही प्रायश्चित्त काफी है।

गौ का दूध, दही, गोमूत्र, गौ का गोबर और घी इन पाँचों चीज़ों को एक साथ मिला देने को पंचगव्य कहते हैं। इनको पहले दिन खा कर आगे के दिन उपवास करे, कुछ न खावे, इसको सांतपनकृच्छ्र कहते हैं। सांतपनकृच्छ्र के पंचगव्य तथा कुशोदक इन छः चीज़ों को क्रम पूर्वक एक एक दिन खा कर छः दिन बितावे और सातवें

नरक को जाती है। यदि स्त्री को तीर्थयात्रा की इच्छा हो तो अपने पति के चरणों को धोकर पीवे। उसके लिए यह व्रत सबसे अच्छा है।

पति के सोते हुए स्त्री को बाये अंग की ओर और पति के मर जाने पर दाहने अंग की ओर बैठना चाहिए। श्राद्ध यज्ञ और विवाह में स्त्री को सदा दाहनी ओर बैठना चाहिए।

ब्राह्मण के लक्षण

जो वेद और शास्त्र को पढ़े और शास्त्र का अर्थ मन लावे उस ब्राह्मण को वेदवित् कहते हैं। इसका वचन मनुष्य को पवित्र करनेवाला है।

एक भी वेद का जाननेवाला ब्राह्मण जिस धर्म का निर्णय कर दे उसको परम धर्म जानना चाहिए तथा मूर्ख दश हज़ार भी जिसको कहें वह धर्म न समझना चाहिए।

जप और होम करने से ब्राह्मण अग्नि के समान तेजस्वी होता है।

प्रतिग्रह लेने से ब्राह्मण इस तरह नष्ट हो जाते हैं जिस तरह पानी से आग। प्रतिग्रह से पैदा हुए दोषों को ब्राह्मण प्राणायाम के द्वारा इस तरह नष्ट कर सकते हैं जिस तरह आकाश में बादलों को हवा भगा देती है।

सामान्य धर्म

इस लोक तथा परलोक में वेद से बढ़ कर कोई दूसरा शास्त्र नहीं और माता से बढ़ कर कोई माननीय

गुरु नहीं और इस जन्म या दूसरे जन्म में दान से बढ़ कर कोई मित्र नहीं है।

जो दान कुपात्र को दिया जाता है वह दान सात पीढ़ी तक कुल को नष्ट करता है।

सन्यासी के धर्म

संन्यासी आपत्ति के समय भी काँसे के बर्तन में कभी भोजन न करे। जो सन्यासी काँसे के बर्तन में भोजन करते हैं, वे मानों निकृष्ट वस्तु खाते हैं।

जो काँसेवाले का बर्तन हो और गृहस्थी का बर्तन किसी धातु का हो उसमें अगर सन्यासी भोजन करे तो उन दोनों को दोष लगता है। इसी विषय में और भी ऋषियों की राय है कि सोना, लोहा, ताँबा, काँसा और चीनी के बर्तन में भोजन करनेवाला संन्यासी दोषी होता है और भोग की चीज़ों को इकट्ठा और इच्छा करने से भी संन्यासी दोषी बन जाता है।

सन्यासी के हाथ में पहले कुल्ला आदि के लिए पानी देना चाहिए फिर भिक्षा दे, बाद में पीने को पानी; अर्थात् किसी बर्तन में भिक्षा या पानी न देना चाहिए। ऐसा अन्न मेरु तुल्य और पानी समुद्र के तुल्य अनन्त फल देनेवाला होता है।

संन्यासी चाहे बृहस्पति के समान बड़ा विद्वान, प्रसिद्ध एवं ज्ञानी हो तो भी उत्तम, कुलीन, ब्राह्मण आदि

के घर में भिक्षा न मिलने पर नीच मनुष्यों के पास से भी एक एक रोटी माँग कर खाय, पर किसी एक ही घर में भोजन कभी न करे।

जो संन्यासी आपत्काल के सिवा घर में रहता हुआ बनी बनाई एक ही जगह भोजन-वृत्ति करता है वह दश दिन तक यव्र नामक औषधि और तीन दिन तक केवल जल पीये, तब शुद्ध होता है।

ब्रह्मचारी, संन्यासी, विद्यार्थी और भिक्षा के अन्न से गुरु की रक्षा करनेवाला, रास्ते में चलनेवाला और जिस की कोई जीवका न हो, ये छ: भिक्षुक कहलाते हैं।

महापातक के प्रायश्चित्त

बिना रँगा कपड़ा, तिलक लगाना, ज़मीन को इकट्ठा करना, सुगन्ध का लगाना, पापियों के साथ मेल, रखना ये पाँच संन्यासी के लिए बड़े पातक हैं। इनकी शुद्धि के लिए क्रम से तीन वर्ष तक कृच्छ्र व्रत करे और यदि कृच्छ्र व्रत न करे तो भारी पाप लगता है।

जिसने स्त्री की हत्या की हो वह मनुष्य तीन महीने तक रात ही में भोजन कर, ज़मीन पर सोये, अथवा एक वर्ष तक कृच्छ्र व्रत करे तो शुद्ध होता है।

धाबी, नट और जो बाँसों से जीविका करनेवाले हों ऐसे मनुष्यों का अन्न खाने से द्विज को चान्द्रायण व्रत करना चाहिए।

चाण्डाल आदि नीच मनुष्य का या रजस्वला स्त्री का छुआ हुआ पकान्न ब्राह्मण ये जाने खा ले तो छः दिन तक आधा प्राजापत्य व्रत करे।

यदि चाण्डाल के अन्न को चारों वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र खा ले तो उनका प्रायश्चित्त इस तरह बत लाया गया है कि—ब्राह्मण चान्द्रायण व्रत, क्षत्रिय सांतपन व्रत करे। वैश्य छः दिन तक पञ्चगव्य खाय और शूद्र तीन दिन व्रत करे और व्रत के बाद सबको यथाशक्ति दान करना चाहिए तब शुद्ध होते हैं।

साधारण धर्म

जिसके घर में एक भी गाय दूध न देती हो तो उस घर में आनन्द कहाँ—अर्थात् गृहस्थ के घर गाय का रखना और उसकी ठीक ठीक सेवा करना परम-धर्म है।

जो अपनी लड़की का अन्न खाता है वह मानो पृथिवी का मल खाता है।

जो घर वेद के उच्चारण से पवित्र नहीं, जो गायों से शोभायमान नहीं और जो बालकों से भरा हुआ नहीं है वह मरघट के समान है।

नीचे लिखे सात स्थानों की मिट्टी अच्छे काम में न लगावे—१ बामी की, २—चूहों के स्थान की, ३—जल के भीतर की, ४—मसान की, ५—वृक्ष की जड़ की, ६—देव-स्थान की और ७—जो बैलों ने खोदी हो। कङ्कड़ और

पत्थर जिसमें न हों ऐसे शुद्ध स्थान की मिट्टी लेनी चाहिए।

मौन-धारण के नियम

शौच, होम, पेशाब, दतौन, स्नान, भोजन और जप करते समय मौन रहना चाहिए।

स्नान, दान, जप, होम, भोजन, देवपूजन, वेद का पठन और पितृतर्पण ये आठ काम पाँव फैला कर न करने चाहिए।

दानधर्म

ग्रहण, विवाह, संक्रान्ति और प्रसव इन मौकों पर रात को भी दान करना उत्तम माना गया है।

रेशम, सूत और पाट के सूत के यज्ञोपवीत (जनऊ) का जो दान करता है वह कपड़े के दान का फल पाता है।

अकाल में अन्न का दान करने वाला, सुभिक्ष में सोने का दान करने वाला और जंगल में प्याऊ द्वारा पानी का दान करनेवाला स्वर्ग पाता है।

सब दानों में विद्या का दान सबसे उत्तम है। पुत्र आदि और सुपात्रों को विद्या का दान दे, कुपात्रों को नहीं। विद्या का दान करनेवाला यदि कुछ कामना रखता हो तो स्वर्ग को और यदि धनादि पदार्थों की इच्छा न रखता हो तो मोक्ष पाता है।

जो ब्राह्मण वेद जानता हो, शास्त्रों में जो चतुर हो, माता पिता का भक्त हो और ऋतु के समय ही स्त्री-सङ्ग करता हो, शील तथा अच्छे आचरण करता हो, सवेरे नहाता हो ऐसे सुपात्र ब्राह्मण को अपना कल्याण चाहने वाला दान दे।

२-विष्णु-स्मृति

एक दिन एकान्त स्थान में बैठे हुए विष्णु ऋषि से कई ऋषियों ने बहुत से प्रश्न किये। तब विष्णु ऋषि उपदेश द्वारा उनको समझाने लगे। उन्होंने कहा कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के लिए हम धर्म का सार कहते हैं तुम लोग अच्छी तरह सुनो।

गर्भाधान आदि संस्कारों का विचार

सीमन्त संस्कार गर्भ के आठवें महीने में करना चाहिए, यह संस्कार स्त्री का नहीं है। किन्तु गर्भ स्थित बच्चे का होता है इससे प्रत्येक गर्भस्थित बच्चे का सीमन्त संस्कार होना चाहिए।

बच्चे के पैदा होते ही शास्त्रानुसार जात-कर्म संस्कार होना चाहिए और उस बच्चे का बहिर्निष्क्रमण संस्कार (घर से बाहर ले आना) चौथे महीने में होना चाहिए। यथा जब छः महीने का हो जाये तब उसका अन्न प्राशन

(अन्न का खिलाना) संस्कार करे और जब तीन वर्ष का हो जाय तब उसका केशकर्म (मुण्डन) होना चाहिए।

ब्रह्मचर्याश्रम का विचार

गर्भ से आठवें वर्ष ब्राह्मण का यज्ञोपवीत (जनेऊ) करना चाहिए। क्योंकि द्विज होने पर ही गायत्री का अधिकारि होता है। गर्भ से ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रिय का और बारहवे वर्ष में वैश्य का जनेऊ होना चाहिए। शूद्र वर्ण का संस्कार यही है कि वह तीनों वर्णों की विधिपूर्वक सेवा करे। और कोई संस्कार शूद्र के लिए नहीं बतलाया गया।

ब्रह्मचर्य (जनेऊ) के समय जिस वर्ण का जो जो दण्ड (लाठी) मेखला, मृगछाला, सूत्र-वस्त्र गृह्यसूत्रकारों ने बतलाया है उस उस का ब्राह्मण आदि वर्णों को धारण करना चाहिए।

ब्राह्म मुहूर्त में उठ कर नहा धो कर तीन आचमन तथा तीन प्राणायाम करके ब्रह्मचारी सन्ध्या करे। फिर सूर्य उदय होने तक गायत्री का जप करे। फिर अग्निहोत्र करके गुरु को अभिवादन (प्रणाम) करे। अभिवादन के पश्चात् जो जो पढ़ना हो गुरु से पढ़ कर, फिर दोपहर को भिक्षा के समय गुरु की आज्ञा ले कर ब्राह्मण आदि तीनों द्विजों के घर से भिक्षा माँग कर लावे। लाई हुई भिक्षा को गुरु को दे देवे। और फिर गुरु की आज्ञा से ब्रह्मचारी नियम से उसका भोजन करे।

शाम को सन्ध्या करता हुआ ब्रह्मचारी एक सौ आठ बार गायत्री का जप करे और यदि भोजन की ज़रूरत हो तो सवेरे की तरह भिक्षा माँग कर खावे।

गृहाश्रम-धर्म-विचार

इस तरह ब्रह्मचर्य धर्म को पूरा करके और वेद पढ़ कर गृहस्थ धर्म की इच्छा करे। फिर गुरु के पास से आकर अच्छे कुल में पैदा हुई, अच्छे चिह्नोंवाली, अपने वर्ण की लड़की के साथ शास्त्र की विधि से विवाह करे।

सन्तान होने पर भी अग्निहोत्र आदि शुभ काम करता रहे। इस विषय में आगे विस्तारपूर्वक बतलाया गया है।

सब ब्राह्मण आदि द्विज गृहस्थ सवेरे उठ कर, शौच आदि करके, आलस छोड़ कर स्नान करके सन्ध्योपासन करे। फिर यज्ञशाला में बैठ कर अग्निहोत्र करके वेदपाठ करे। दुपहर को पंच महायज्ञों के बाद भोजन करे। फिर कुछ आराम करके तीसरे पहर इतिहास का भी कुछ पाठ किया करे।

शाम को घर में या बाहर सन्ध्योपासन करके यथा शक्ति गायत्री का जप करे। फिर अग्निहोत्र करके गृह्योक्त विधि से केवल बलि-कर्म नाम भूतयज्ञ करके विधिपूर्वक भोजन करे।

अतिथि-सत्कार

दिन में या रात में यदि कोई अतिथि आ जाय तो आसन, बैठने को जगह, जल और आदर से बोलकर उस

का सत्कार करे और कुशलप्रश्न पूछ कर उसको सन्तुष्ट करके विद्या आदि का विचार करे। पहले अतिथि के सोने का प्रबन्ध करके फिर उसकी आज्ञा ले कर खुद सोवे।

अगर भिक्षा के लिए कोई योगी आ जावे तो उसका भले प्रकार सत्कार करना चाहिए।

गृहस्थियों के लिए स्वर्ग का साधन उत्तम कर्म यही है कि ब्राह्ममुहूर्त (३।४ घड़ी रात रहने पर) में उठ कर पहले कही हुई विधि को अच्छी तरह करे।

वानप्रस्थ-धर्म का विचार

गृहस्थी या ब्रह्मचारी जब वन में रहना चाहे तब चीथड़े और वृक्षों की छाल को कपड़ों की जगह काम में लावे। और ऐसे भुन्नज को खावे जो बिना जोते बोये कुदरती पैदा हुआ हो। वहाँ पर अधिकतर मौन रहे और पंचयज्ञों को विधिपूर्वक सदा करता रहे, छोड़े नहीं। नीवार आदि अन्न से अग्निहोत्र भी करना चाहिए। सावन महीने में अग्नि लेकर वहाँ जाना चाहिए और ब्रह्मचर्य धारण कर के रहना चाहिए।

निरालस होकर पंचयज्ञों को करे। भोजन के वास्ते जो अन्न इकट्ठा करे उसको आश्विन महीने में न खाना चाहिए और वन में पैदा हुए नये अन्न को इकट्ठा करना चाहिए।

ब्रह्मचारी के धर्म

अनेऊ के बाद ब्रह्मचारी गुरु-कुल में रह और मन, कर्म और वाणी से गुरु-कुल में प्रीति रक्खे।

ब्रह्मचर्य्यपूर्वक रहे, पृथ्वी पर सोवे, समिदाधान करे, और गुरु की सेवा करे।

ब्रह्मचारी शास्त्रों में बतलाई हुई विधि से वेद और वेदाङ्गों को पढ़े। विधि-रहित पढ़ना और धर्म करना फलदायक नहीं होता। अपने स्वाध्याय की सिद्धि के लिए गुरु-कुल में वेद के व्रतों का करे और गुरु के पास सब शौच और आचरण सीखे।

मृगछाला, दण्ड, मेखला, कंधनी और अनेऊ इनको होशियारी से अप्रमत्त होकर धारण करे।

इन्द्रियों को जीत कर भोजन के लिए सदा शाम को और सबेरे भिक्षा माँगे फिर सावधान होकर आचमन करने के बाद उसे खावे।

प्रातःकाल सदा दतौन करे। छाता, जूता, इतर, फुलेल, माला, नाचना, गाना, बहुत बोलना, और मैथुन इनको बिल्कुल छोड़ दे। हाथी, घोड़े पर न चढ़े और इन्द्रियों को वश में रखता हुआ ब्रह्मचारी सन्ध्योपासन नित्य किया करे।

सन्ध्या के बाद गुरु के चरणों को अभिवादन करके भक्ति के साथ माता-पिता की सेवा करे।

जो ब्रह्मचारी गुरु और माता-पिता की सेवा करना भूल जाता है उस पर देवता अप्रसन्न हो जाते हैं। इस लिए ईर्ष्या को छोड़ कर ब्रह्मचारी इनकी शिक्षा—उपदेश—में सदा स्थित रहे।

गुरु से चारों वेद, या दो वेद या एक वेद पढ़े और जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी गुरु को दक्षिणा देकर समावर्त्तन संस्कार कर के गाँव में रहे।

जीभ, उपस्थ इन्द्रिय, पेट, और हाथ ये इन्द्रियाँ जिसकी भले प्रकार वश में हो गई हों वह ब्राह्मण ब्रह्मचर्य्य अवस्था से ही संन्यास ले लेने का समय नियत कर ले। र अगर वह नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहना पसन्द करे तो उसी ाचार्य्य के पास मरण पर्यन्त विरक्त होकर गुरु की सेवा रे। यदि आचार्य्य का स्वर्गवास हो जाय तो गुरु के पुत्र े पास या उसके शिष्य के पास गुरु के कुल में तप करता ुआ जन्म बितावे।

नैष्ठिक ब्रह्मचारी के लिए विवाह और सन्यास का अधिकार नहीं है। विधि-पूर्वक सावधानी से जो ब्रह्मचारी इस प्रकार गुरु की सेवा करता हुआ रहता है वह अत्यन्त दुर्लभ और कल्याण रूप विद्या को पाकर उसका सुलभ फल (मोक्ष) प्राप्त करता है।

गृहस्थ-धर्म

जो वेद को पढ़ चुका हो और वेद-शास्त्र का आशय भले प्रकार समझता हो ऐसा ब्रह्मचारी समावर्त्तन संस्कार

करके जिसके प्रवर और गोत्र अपने प्रवर और गोत्र से दूसरे हों और जिसका कोई भाई मौजूद हो, देह के अंग जिसके ठीक ठीक हों और जिसका आचरण पवित्र हो ऐसी सुन्दर कन्या से विवाह करे। और ब्राह्मण, *विवाहों में जो उत्तम ब्राह्म विवाह माना गया है उसी वि*से करे। ब्राह्म विवाह से भिन्न विवाह क्षत्रिय आदि लिए कहे गये हैं।

आलस को छोड़कर सबेरे शाम नित्य होम और नित्य दतौन करे। सूर्य के उदय होने से पहले कर विधि-पूर्वक मुँह की सफ़ाई करे। मुँह के बासी ह से मनुष्य का मन मलिन रहता है, इससे सूखी या दतौन अवश्य करनी चाहिए। यह दतौन करंज, कदम या मौल सिरी की होनी चाहिए—अथवा पृश्निपर्णी जामुन, मोंघ अपामार्ग, आक, गूलर भी दतौन अच्छी मानी गई है। और बाद सब वृक्ष पवित्र और जिनमें दूध निकलता हो ऐसे वृक्ष यहां क हु गये हैं। दातौन आठ अंगुल लंबी या बालिश्त भर होनी चाहिए। दातौन के न मिलने पर मञ्जन आदि भी मुँह की शुद्धि हो सकती है। दातौन के बाद करना चाहिए।

स्नान करने के बाद सन्ध्या करनी चाहिए। स का समय यह है कि प्रातःकाल सन्ध्या उस समय आरम्भ करे जब आकाश में तारे दिखलाई देते हों और सूर्य के

उदय होने के समय तक गायत्री का जप करता रहे। बाद हवन करे। शाम को सूर्य्य के अस्त होने से पूर्व ही सन्ध्या शुरू कर दे और जब तक तारे दिखलाई न दे तब तक बराबर सन्ध्या करता रहे। फिर हवन करे।

इस कृत्य के बाद देवयज्ञादि चारों यज्ञ विधि-पूर्वक करे। भोजन के समय जितने समय में गाय दुही जाती है उतने समय तक गृहस्थी पुरुष अतिथि की बाट देखे। यदि कोई अतिथि आ जाय तो उसका विधि-पूर्वक सत्कार करे। फिर स्वयं भोजन करे।

वानप्रस्थ-कृत्य-विधि

गृहस्थी पुरुष पुत्र, पौत्र आदि को और अपनी वृद्ध अवस्था को देख कर स्त्री को पुत्रों के अधीन करके या अपने साथ लेकर वन में चला जावे। वहाँ नीवार आदि अन्न से या शाक, मूल, फलों से अपना गुजारा करे और सवेरे शाम हवन करता रहे।

चौथे पहर या आठवें पहर या छठे पहर रोज एक बार भोजन करे। गरमी सरदी का विचार न करके तप करता रहे। जो वानप्रस्थ मन को वश में करके समाधि लगा कर तप करता है वह पापों से रहित, निर्मल, शान्ति रूप हो कर सनातन दिव्य पुरुष को प्राप्त होता है।

सन्यास-आश्रम की कृत्य-विधि

वानप्रस्थ आश्रम को समाप्त करके पापों को दूर करता हुआ मनुष्य चौथे संन्यास-आश्रम को ग्रहण करे।

सन्यास ले लेने के बाद पुत्रादि में प्रीति और उनसे व्यवहार करना छोड़ दे और अपने भाई बन्धों और सब प्राणियों को अभयदान दे।

संन्यासी कौपीन आदि को ग्रहण कर उत्तम तीर्थस्थान में आकर वस्त्र से छाने हुए पानी से स्नान और आचमन करके, प्राणायाम कर और यथाशक्ति गायत्री का जप करके परब्रह्म परमात्मा का खूब ध्यान करे। देह की स्थिति के लिए रोज भिक्षा माँगे। जितने अन्न से पेट भर जाये उतनी भिक्षा लेनी चाहिए, अधिक नहीं।

भोजन के पश्चात् अपना समय जप, ध्यान और उत्तम उत्तम किताबों के पढ़ने में बिताये।

जो संन्यासी धर्म में तत्पर शान्त, सब प्राणियों में एक सा, और जितेन्द्रिय हो कर विचरता है वह उत्तम स्थान को प्राप्त होता है।

योगाभ्यास विधि

योगाभ्यास के बल से ही पाप नष्ट होते हैं इसलिए योग में तत्पर हो कर उत्तम आचरण से नित्य ध्यान कर।

जो ब्रह्म अपने ही स्वरूप से बाहर और भीतर स्थित है और शुद्ध सोने के समान जिसकी कान्ति है ऐसे ब्रह्म का मरण पर्यन्त एकान्त में एकाग्र बैठ कर ध्यान करे।
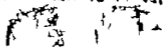
जो सब प्राणियों का हृदय और जो सबके हृदय में स्थित है और जो सब मनुष्यों के जानने योग्य है ऐसे परमात्मा को जाने।

जब तक आत्म-प्राप्ति का सुख न हो तब तक ध्यान करे। आत्म-लाभ के अविरोधी श्रुति और स्मृति के धर्म को करे और गृहस्थ आदि का धर्म न करे।

जैसे घोड़े के बिना रथ और सारथि के बिना घोड़ा नहीं चल सकता और दोनों परस्पर सहायक हैं, इसी प्रकार तप (कर्मकाण्ड) और विद्या (ज्ञान) दोनों मिल कर ससार के रोग की दवा हैं।

जिस प्रकार मीठे से मिला हुआ अन्न और मीठा, और जिस प्रकार दोनों ही पखों से आकाश में पक्षियों की गति (उड़ना) होती है, वैसे ही ज्ञान और तप से युक्त और योग में लगा हुआ मनुष्य दोनों (स्थूल-सूक्ष्म) देहों को शीघ्र छोड़ कर बन्धनों से छूट जाता है। इस प्रकार जिस का शरीर छूटता है, उसकी कभी कुगति नहीं होती।

इस प्रकार हारीत मुनि ने वर्णों और आश्रमों के धर्म बतलाये हैं। इन बतलाये हुए धर्मों में चारों वर्णों में से जो विपरीत बरताव करे उसको पतित समझना चाहिए। अपने अपने धर्मों को करते हुए मनुष्य परमगति पाते हैं।

४—औशनस स्मृति

सृष्टि के आदि में चार ही वर्ण माने गये थे—अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र। इन चारों वर्णों के कर्तव्य कर्म भी पृथक पृथक धर्मशास्त्रों में बतलाये गये हैं। पहल समय में वस्तुतः प्रत्येक वर्ण अपने अपने वर्ण का धर्म अच्छी तरह किया करता था। फिर धीरे धीरे जैसा जैसा समय परिवर्तन होता गया वैसा वैसा वर्णों के धर्माधर्मों में भी फर्क पड़ता गया। लोगों में कुछ कुछ अनाचार की प्रवृत्ति होने लगी चार होते होते वर्णसंकरता भी होने लगी। उनके कर्मों में भी भेद हो गया।

इस स्मृति में ऐसी ही जातियों का अधिकतर वर्णन है जो वर्णसंकरता से पैदा हुई हैं। उन्हीं जातियों के देश कालानुसार जैसा जैसा वे कर्म करते हैं वर्णन किया गया है।

इस स्मृति की व्याख्या सर्वसाधारण के लिए अधिक उपयोगी न समझ कर हम इसकी इतिश्री यहीं करते हैं।

५—अंगिर-स्मृति

इस स्मृति में नीले रंग को विशेषतया बुरा बतलाया गया है। नील के रँगे हुए कपड़े कभी न पहनने चाहिएँ। नील का कपड़ा पहन कर भोजन करना, दान करना नील की खेती करना आदि सभी बुरे हैं और प्रायश्चित्त के योग्य हैं।

बहु-विध प्रायश्चित्त-विधि

यदि ब्राह्मण अन्त्यज का पकाया हुआ भूल से अन्न खा ले तो उसे चान्द्रायण व्रत करना चाहिए। और यदि क्षत्रिय खा ले तो उसे कृच्छ्र व्रत तथा वैश्य खा ले तो उसे आधा कृच्छ्र व्रत करना चाहिए।

धोबी, चमार, नट, बुरुड, कैवर्त्त,, मेद और भील ये सात अन्त्यज कहाते हैं।

यदि द्विज भूल से अन्त्यज के घर का पानी पी ले तो उसे शास्त्रानुसार प्रायश्चित्त जरूर करना चाहिए। यदि ब्राह्मण चण्डाल के कुएँ या घर का पानी पी ले तो

उसे सांतपन व्रत, क्षत्रिय पी ले तो उसे प्राजापत्य व्रत और वैश्य पी ले तो उसे आधा प्राजापत्य और शूद्र पी ले तो उसे चौथाई प्राजापत्य व्रत करना चाहिए। ब्राह्मण श्मशान व अन्त्यज जातियों का पानी पीकर एक दिन उपवास करके पंचगव्य पीने से भी शुद्ध हो जाता है।

बिना जाने लाठी के मारने से गौ मूर्छित हो जाय या गिर पड़े तो आठ हजार गायत्री का जप करने से शुद्धि होती है।

रजस्वला स्त्री चौथे दिन स्नान करने के बाद शुद्ध होती है। उसको रजोदर्शन समाप्त होने पर ही स्नान करना चाहिए।

सोने-चाँदी के बर्तन वायु सूर्य और चन्द्रमा की किरणों से शुद्ध हो जाते हैं।

स्त्री की कमाई से जीविका करना ठीक नहीं, अपनी जीविका के लिए स्वयं परिश्रम करे और धन इकट्ठा करे। मनुष्य को स्त्री के भरोसे पर न रहना चाहिए।

६—यम-स्मृति

विशेष प्रायश्चित्त-विधि

इस स्मृति में भी विशेषता के साथ प्रायश्चित्त विधि बतलाई गई है।

जो पतित हुए बिना ही भाई-बन्धों को छोड़ देते हैं उनको राजा दण्ड दे। पतित पिता भी त्यागने योग्य होता है, पर माता नहीं।

जो पुरुष आत्मघात (खुदकुशी) करता हुआ मरने से बच जाय उस पर दो सौ रुपया जुर्माना करना चाहिए। और उसके पुत्र तथा मित्रों को भी एक एक मुद्रा दण्ड देना चाहिए और फिर सबको प्रायश्चित्त भी करना चाहिए।

जल में डूबने से या फाँसी से जो बच गये हैं, संन्यास धर्म का नाश करने वाले या जो उसके त्यागी हैं, जहर खाने से या ऊँचे स्थान से गिरने से और शस्त्र के लगने से मरते मरते जो बच जायँ ये सब प्रायश्चित्त के योग्य होते हैं। ये चान्द्रायण या तप्तकृच्छ्र व्रत के करने से शुद्ध

हो जाते हैं। ऐसे पापियों के घर में रहनेवाला या भोजन करनेवाला भी पापी हो जाता है। उसको दो चान्द्रायण व्रत या गोदान करना चाहिए।

जो गोशाला या ब्राह्मण का घर जला दे और जो खुद फाँसी लगा कर मरा हो, उस का जलानेवाला और फाँसा काटने वाला द्विज एक कृच्छ्र व्रत करके शुद्ध होता है।

चाण्डाल के घर का भोजन या उनकी स्त्रियों के साथ सहवास करने वाला एक वर्ष तक कृच्छ्र व्रत करे और बिना जाने भोजन कर ले तो दो चान्द्रायण व्रत करना चाहिए।

ब्रह्महत्या आदि महापातक करने वाले बड़े बड़े अश्वमेध आदि यज्ञों के करने से शुद्ध होते हैं।

गाय के मारने से अगर गाय का गर्भ गिर जाय तो एक कृच्छ्र व्रत करना चाहिए।

गाय को बाँधने, रोकने, और पालन-पोषण करते हुए यदि बीमार गाय मर जाय तो बाँधना आदि काम करनेवाले को पाप नहीं लगता।

मूर्छित होकर ज़मीन पर गिर हुए पशु को जो मनुष्य गुस्से के बिना ही चलाने के वास्ते लकड़ी से धमकाये और वह गिरा हुआ पशु यदि उठकर दो चार पैर चले या घास खा ले या पानी पीले और फिर अपने पूर्व रोग से मर जाय तो प्रायश्चित्त नहीं होता।

प्रायश्चित्त के समय बाल सब मुड़वा देना चाहिए।

दीवाल की, जल के भीतर की बामी की, चूहों की

खोदी हुई, रास्ते की, मुर्दघट की और शौच की बची हुई मिट्टी शुद्धि के लिए नहीं लेनी चाहिए।

इष्ट (यज्ञ आदि) करना और पूर्त कुएँ आदि सबको बनाने चाहिए। इष्ट से स्वर्ग और पूर्त से मोक्ष मिलता है। जिस प्रकार की धन की शक्ति हो वैसा ही यज्ञ हो सकता है। तालाब, बाग़ और प्याऊ इनका नाम पूर्त है। बावड़ी, कुँआ, तालाब और मन्दिर ये अगर टूट फूट गये हों तो इनकी मरम्मत करानेवाला भी पूर्त के फल का भागी होता है।

सफ़ेद गाय का मूत्र, काली गाय का गोबर, लाल गाय का दूध, सफ़ेद गाय का दही, और कपिला गाय का घी, यह पंचगव्य प्रायश्चित्तियों के लिए बतलाया गया है।

एक सूतक के होते हुए यदि दूसरा सूतक हो जाय तो दूसरे सूतक का दोष नहीं होता। पहले के साथ उसकी भी शुद्धि हो जाती है।

जन्म के अशौच के साथ जन्म अशौच की और मृतक अशौच के साथ मृतक अशौच की शुद्धि हो सकती है। दुबारा शुद्धि करने की कोई जरूरत नहीं।

मोक्ष-साधन और क्रोध आदि का त्याग

यमराज को यम नहीं कहते किन्तु अपने शरीर को ही यम कहते हैं। जिस मनुष्य ने अपने को वश में कर लिया उसका यमराज क्या करेगा? मनुष्य को चाहिए कि पहले वह अपने को अपने वश में करे।

खड्ग (तलवार) भी ऐसा तीखा या पैना नहीं और साँप भी ऐसा विकराल या भयानक नहीं जैसा कि मनुष्यों के शरीर में क्रोध अपना नाश करनेवाला है। इस क्रोध की बड़ी महिमा है, इसे छोड़ने की बड़ी ज़रूरत है।

क्षमा गुण मनुष्य को इस लोक और परलोक में सुख देनेवाला है। क्षमा करनेवालों में एक ही प्रत्यक्ष दोष देख पड़ता है, दूसरा नहीं। वह यह कि क्षमा करनेवाले मनुष्य को लोग असमर्थ समझने लगते हैं। सो ठीक नहीं।

शब्द-शास्त्र (व्याकरण) ही पढ़ने पढ़ानेवाले मनुष्य को, घर से प्रेम रखनेवाले को, तथा भोजन-वस्त्र में प्रेम करनेवाले को और जो जगत् को अपने वश में करने के लिए लगे रहते हैं उनको मोक्ष नहीं मिल सकती। किन्तु एकान्त में रहनेवाले, दृढ़ व्रत करनेवाले, सांसारिक मोह जाल में अधिक न फँसनेवाले को मोक्ष होता है। और अध्यात्म योग में लगे रहनेवाले, हिंसा न करनेवाले और स्वाध्याय रूप याग में प्रवृत्त हुए मन वाले को—वेदादि

शास्त्रों के पढ़ने पढ़ाने में लग रहने वाले पुरुष का अच्छा तरह मोक्ष होता है।

गुस्सा करनेवाला मनुष्य जो कुछ यज्ञ, होम, पूजा, पाठ करता है उसका वह सब किया हुआ शुभ काम इस तरह नष्ट हो जाता है जिस तरह कच्चे घड़े में पानी भरने से घड़ा टूट फूट जाता है।

अपमान से तप की वृद्धि और सत्कार से तप का नाश होता है। अर्चित और पूजित ब्राह्मण दुही हुई गाय के समान दुःखी होता है। फिर वही गाय जैसे अमृत जल से पैदा हुए तिनकों से पुष्ट होती है वैसे ही वह ब्राह्मण भी जप तथा होम से पुष्ट होता है।

मनु में भी बतलाया गया है कि ब्राह्मण को सम्मान से सदा विष की तरह डरना चाहिए। और अमृत की तरह अपमान की इच्छा रखनी चाहिए। जो ब्राह्मण आदर चाहेगा वह यज्ञ, तप आदि शुभ कर्म अच्छी तरह नहीं कर सकता।

जो दूसरे की स्त्री को माता के समान और दूसरे के धन को ढेले के समान और सब प्राणियों को अपने समान देखता है, वास्तव में वही मनुष्य देखता है। उसी को द्रष्टा कहते हैं।

८—संवर्त-स्मृति

ब्रह्मचर्य्याश्रम-धर्म

एक दिन वामदेव आदि ऋषि वेद वेदाङ्ग के पारगत संवर्त्त ऋषि के पास उपस्थित हुए और उन्होंने द्विजों के धर्म का साधन जानने की इच्छा प्रकट की। तब संवर्त्त ऋषि ने कहा—

जिस देश में काला हरिण स्वभाव से सदा विचरता हो उसी को धर्म का देश समझना चाहिए और वही द्विजों के धर्म का साधक है।

जनेऊ हो जाने के बाद प्रति दिन द्विज ब्रह्मचारी गुरु के हित का आचरण करे और माला, गन्ध और शहद इनको छोड़ दे।

प्रातःकाल की सन्ध्या उस समय विधि से आरम्भ करे जिस समय आकाश में तारे दिखलाई देते हों और सायङ्काल की सन्ध्या का उस समय आरम्भ करे जिस समय सूर्य्य आधा अस्त हो चुका हो। सवेरे जब तक

करता रहे। अपना कल्याण चाहनेवाला द्विज पञ्च कभी न त्यागे। परन्तु जन्म और मरण के सूतक में य छोड़ने चाहिए। इन दोनों सूतकों में दान और वेद पढ़ना भी छोड़ दे। ये काम ब्राह्मण को, दश दिन तक क्षत्रिय को बारह दिन तक और वैश्य को पन्द्रह दिन तक छोड़ने चाहिए। शूद्र एक महीने के बाद शुद्ध होता है।

किसी के मर जाने पर प्रथम, तृतीय, चतुर्थ पर्व या दिन द्विज को अस्थि-संचयन करना चाहिए। अस्थि-संचयन के बाद ही दूसरों को छू सकता है।

पुत्र के पैदा होने पर पिता को सचैल स्नान करना चाहिए। माता दश दिन में शुद्ध होती है और पिता के स्नान कर लेने पर स्पर्श किया जा सकता है। जन्म-सूतक में सूप अन्न या फल से होम करने का विधान है।

मरण और जन्म-सूतकों में पंचयज्ञ विधि नहीं करनी चाहिए। दश दिन के बाद धर्म का जाननेवाला ब्राह्मण अच्छी तरह वेद पढ़े।

दान-धर्म-माहात्म्य

मनुष्य को पापों का नाश करनेवाला दान अनेक तरह से देना चाहिए। संसार में मनुष्य को जो बहुत इष्ट और प्यारा हो अपने अक्षय पुण्य की इच्छा करनेवाले पुरुष को वही चीजें गुणवान् पुरुष को देनी चाहिएँ। अनेक तरह के द्रव्य और अनेक तरह के अन्न, मुद्रा और रत्न ग

को पाप-रहित मनुष्य गुग्गल को देकर लक्ष्मी को प्राप्त होता है। गन्ध, भूषण और फूल इन चीज़ों का दान करनेवाला प्रसन्न हुआ जहाँ तहाँ पैदा होता है।

जो दान वेद पाठी तथा कुलीन और विशेष कर अभ्यागत को दिया जाता है वह बड़े फल का देने वाला होता है।

सुशील, वेद को जानने वाले, कुलीन तथा शुद्ध एवं बड़े बुद्धिमान् ब्राह्मण को बुला कर हव्य और कव्यान्न से उसका सत्कार करे।

अनेक तरह के द्रव्य जो रस वाले हों और जिनको लेने वाला अच्छा समझे वे ही चीज़ें अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुष का देनो चाहिएँ।

वस्त्र के दाता का उत्तम वेप और चाँदी के दाता का सुन्दर रूप होता है। और सोना दान करनेवाले को धन की वृद्धि तथा अच्छी अवस्था मिलती है।

प्राणियों को अभय दान देने से सब कामनाये पूरी होती हैं और बड़ी उम्र और सदा सुख मिलता है।

अन्न, जल और घी का दान करनेवाला सुख भोगता है और भूषण को देकर बड़े फल को प्राप्त होता है।

पान का दान करने वाला बुद्धिमान्, पण्डित, रूपवान् और भाग्यशाली हाता है।

जो मनुष्य खड़ाऊँ, जूता छाता, चारपाई और आसन

तथा अनेक तरह की सवारी देता है वह आजन्म धनी बनता है।

जो जाड़े में दूसरों का शीत निवारण करता है वह अठराग्नि की दीप्ति प्राप्त करता है और रूपवान् तथा भाग्यवान् होता है।

जो औषधि, घी मिला हुआ भोजन रोगियों के रोग के दूर करने के लिए दान करता है वह रोग-रहित, सुखी और बड़ी उम्र का होता है।

जो जाड़े के दिनों में इन्धन का दान करता है वह युद्ध में शत्रुओं को जीतता और लक्ष्मीवान् बन कर देदीप्यमान बनता है।

जो अच्छी तरह से कन्या को ज़ेवर पहना कर और कपड़े पहना कर कन्या के समान वर को ब्राह्म विधि से सत्कार के साथ कन्यादान करता है वह कल्याण को प्राप्त होता है और सज्जनों में भला तथा कीर्ति प्राप्त करता है।

जो अन्न का दान करता है वह सदा तृप्त और पुष्ट रहता है और अन्न का दान करनेवाला सुखी तथा सब कामों से युक्त रहता है। सब दानों में अन्न का दान उत्तम कहा गया है क्योंकि सब प्राणियों का अन्न ही जीवन है। अन्न से ही प्राणी पैदा होते हैं और अन्न ही से जीते हैं।

जो विद्या का दान करता है वह सदा सुखी रहता है और मोक्ष पाता है।

कभी किसी की बुराई न करनी चाहिए झूठ कभी न बोलना चाहिए और किये हुए दान की प्रसिद्धि कभी न करनी चाहिए। यह नहीं कि थोड़ा सा भी दान किया और फौरन शुभ समाचार लिख कर समाचार-पत्रों में भेज दिया। इससे कुछ लाभ नहीं होता।

जो मनुष्य गृहस्थी का काम करके अपनी स्त्री का पालन पोषण करते हैं और ऋतुकाल में ही अपनी स्त्री का संग करते हैं वे परमगति को प्राप्त होते हैं।

वानप्रस्थ-धर्म

इस तरह दूसरे आश्रम को समाप्त करके जब बाल सफेद हो जावें और अवस्था भी अधिक हो जाय तब तीसरे आश्रम—वानप्रस्थ का आश्रय लेना चाहिए। उस समय अकेला या स्त्री सहित वन को चला जाय। वन में अग्निहोत्र कभी न छोड़े। वेद का अध्ययन करता रहे। कन्द, मूलादि को खावे और शाक, मूल, फलादि का दान भी सदा करते रहना चाहिए।

सन्यास-धर्म

इस तरह वानप्रस्थ-आश्रम को पूरा करके क्रोध और इन्द्रियों के वेग को जीत कर संन्यास लेलेना चाहिए।

संन्यासी हो कर वेद का भी अभ्यास करना चाहिए और आत्मविद्या में तत्पर रहना चाहिए और

विचारवान् बन कर संन्यासी कई घर से भिक्षा माँग कर अपना गुज़ारा करे।

निर्जन वन में बैठ कर मन वाणी और कर्म से एकाग्र नित्य ब्रह्म का विचार कर, मरने और जीने का कभी ख्याल न करे। जब तक अवस्था समाप्त हो काल की प्रतीक्षा करता रहे।

क्रोध और इन्द्रियों को वश में करके जो चारों आश्रमों का सेवन कर लेता है वह वेद शास्त्र का जाननेवाला ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है।

ब्रह्महत्या आदि महा पातकों के प्रायश्चित्त

ब्रह्महत्यारा, मदिरा पीने वाला, सोने की चोरी करने वाला, गुरु की शय्या पर गमन करने वाला और पाँचवाँ इनका साथी, ये पाँच महापातकी कहलाते हैं।

ब्रह्महत्यारे को सब घर बार छोड़ कर वन में चला जाना चाहिए। वह वहाँ वक्कल पहन कर रहे और जटा रखाये रहे सब काम छोड़ कर वन में पैदा हुए फल, मूल खाये। यदि फल मूल से गुज़ारा न हो तो भीख माँगने के लिए गाँव में घूमे। चारों वर्णों से भीख माँगे और हत्या के चिह्न को बाँधे रहे। मन को सदा अपने काबू में रखने भिक्षा माँग कर फिर भी वन ही में चला जावे। वह सदा आलस्य को छोड़ कर वन में ही निवास करे और अपने पाप-कर्म प्रकट करता रहे। ऐसे पातकी का बारह वर्ष तक ब्रह्म

करना चाहिए और सब इन्द्रियाँ रोक कर सब प्राणियों की भलाई में रहना चाहिए। इस तरह बर्ताव करने से ब्रह्म हत्या से छुटकारा होता है।

द्विजों को मदिरा कभी न पीनी चाहिए। जितने प्रकार की मदिरा होती है सब एक ही दरजे की मानी गई हैं—सबके पीने से एक सा ही पाप होता है। मदिरा पीने का प्रायश्चित्त इस तरह है कि आग में गर्म किया हुआ गाय का मूत्र या गोबर पीना चाहिए—अथवा गर्म किया हुआ घी। दूसरी बात यह कि सांसारिक सब कामनायें छोड़ कर वन में बसना चाहिए या तीन चान्द्रायण व्रत करना चाहिए। इस तरह मदिरा पीनेवाले की शुद्धि होती है। मदिरा के बरतन का पानी भी पी कर मनुष्य फिर यज्ञोपवीत संस्कार के योग्य हो जाता है।

सोने की चोरी करने वाले की शुद्धि इस तरह होती है—चोरी करने के बाद चोर अपने राजा से निवेदन करे कि मैंने भूल से यह अपराध किया है, तब राजा को चाहिए कि उसको सख्त सजा दे। दूसरा यह कि फटे पुराने फटे कपड़े पहन कर वन में चला जाना चाहिए और ब्रह्म हत्या का व्रत करना चाहिए। इस तरह भी शुद्ध होता है।

गुरु की शय्या पर गमन करने वाले का प्रायश्चित्त इस तरह बतलाया गया है कि—लोहे की गर्म कड़ाही में सो कर स्वयं शरीर छोड़ दे अथवा चार या तीन चान्द्रायण व्रत करे।

जो कोई इन पापियों के साथ मोह वश सम्बन्ध रखता है उसको भी उसके साथ वैसा ही प्रायश्चित्त करना चाहिए, तभी शुद्धि होती है।

दूसरे प्रायश्चित्त

गाय मारने वाले का प्रायश्चित्त इस तरह है कि—गाय मारने वाला गाय के ही पास अपना संस्कार कर और गोशाला में ही इन्द्रियों को वश में रखता हुआ पन्द्रह दिन तक पृथिवी पर सोवे। तीन वक्त स्नान करे और नाखून तथा बाल न रक्खे। सत्तू, जौ, दूध, दही और गोबर इनका क्रम से गोहत्या के पाप से मुक्ति चाहने वाला मनुष्य भोजन कर और यथाशक्ति गायत्री तथा दूसरे पवित्र मन्त्रों का जप करता रहे। जब आधा महीना हो चुके तब ब्राह्मणभोजन आदि करे और गोदान भी करे।

हाथी, घोड़ा, भैंस, ऊँट और बन्दर ये यदि भूल से किसी से मर जावे तो उसे सात दिन तक निराहार व्रत करना चाहिए।

बाघ, कुत्ता, गधा सिंह गिद्ध और सुअर इनको बिना जाने मारनेवाला तीन दिन तक व्रत करने से शुद्ध होता है।

वन में घूमने वाले हिरनों का मारनेवाला उपवास करके एक दिनरात और वैष्णव बाल मन्त्र का जप करता हुआ खड़ा रहे तो शुद्धि होती है।

हंस, कौआ, बगला, मोर, कारण्डव (एक प्रकार का हंस), सारस और पपीहा इन पक्षियों के मारनेवाले को तीन दिन तक उपवास करके रहना चाहिए।

चकवा, कूँच, मैना, तोता तीतर श्येन, गीध, उल्लू कबूतर, टिटिहरी, जालपाद (हंस का भेद), कोयल और मुरगा इनको मारनेवाला एक दिन उपवास व्रत करे। कुछ भी न खावे। ऊपर कहे जीवों का मारनेवाला व्रत के साथ साथ अग्नि मन्त्र का जप करता हुआ खड़ा रहे।

मेंढक, साँप, बिलाव और चूहा इनके मारनेवाले को तीन उपवास व्रत और दान करना चाहिए।

जिनमें हड्डी नहीं होती ऐसे मक्खी मच्छर आदि जीवों को मारनेवाला प्राणायाम करने से शुद्ध हो जाता है। और जिनमें हड्डी होती है ऐसे छोटे छोटे जानवर भूल से मर जावें तो दान करने से शुद्धि होती है।

सब प्रकार के अनर्थ दूर करने के उपाय

स्नान करके शुद्ध होकर, धुले हुए साफ कपड़े पहन कर, शुद्ध मन हो कर, इन्द्रियों को जीत कर और सात्विक स्वभाव होकर ज्ञानवान् मनुष्य को दान करना चाहिए।

मन को जीतनेवाला द्विज उपपातकों (छोटे छोटे पापों) की शुद्धि के लिए सात व्याहृतियों से एक हजार आहुति देकर होम करे और बड़ा पातकी गायत्री से एक

लाख भाहुति देकर होम करे। क्योंकि गायत्री मन्त्र पवित्र करने वाला है।

सब प्रकार के पापों की शुद्धि के लिए वेदों की माता पवित्र गायत्री मन्त्र का वन में जाकर या नदी के किनारे बैठ कर सावधानता से जप करे। नदी, तालाब आदि में विधिपूर्वक स्नान तथा आचमन करके तीन प्राणायामों से शुद्ध हुए द्विज को गायत्री का जप करना चाहिए। पापियों को शुद्ध करनेवाला गायत्री से बढ़ कर दूसरा उपाय नहीं है। महा-व्याहृति और ओंकारसहित गायत्री का जप करना चाहिए।

ब्रह्मचारी आसन छोड़ कर सबकी भलाई में लगा हुआ एक लाख गायत्री का जप करने से पाप से छूटता है।

यज्ञ करने के अयोग्य पुरुष के घर यज्ञ कराने से और बुरा अन्न खा कर आठ हजार गायत्री का जप करने से मनुष्य शुद्ध होता है।

जो प्रति दिन गायत्री का जप करता है वह बिना जाने किए हुए पाप से इस तरह छूट जाता है जैसे केंचुली से साँप।

ओंकार सहित सात महा व्याहृति, गायत्री और प्राणायाम द्विज को नित्य करने चाहिएं।

मन को वश में करने का नाम प्राणायाम है, सावधान होकर प्रति दिन कम से कम तीन प्राणायाम करना चाहिए। मन, वाणी या देह से जो किया हुआ पाप है वह प्राणायाम के प्रभाव से सब भस्मीभूत हो जाता है। प्राणा-याम करने से पाप की निवृत्ति हो जाती है।

जब भोजन तैयार हो चुके और जो कुछ भोजन के लिये बनाया गया हो उसमें से खट्टा, नमकीन और क्षार भोजन न लिया गया हो, मीठा मिले हुए अन्न को लेकर हवन कर और अतिथि का निकाले तथा कुत्ते आदि जीवों को टुकड़े दे दे। इसका नाम भूतयज्ञ है।

पाँचवाँ मनुष्ययज्ञ अर्थात् अतिथि-सेवा है। यह इस प्रकार करनी चाहिए कि—जिसकी कोई तिथि आने की निश्चित न हो अर्थात् अचानक आ जाय, जो धर्मात्मा, सत्य का उपदेश करने वाला, सब की भलाई के लिए सब जगह घूमने वाला, पूरा विद्वान्, परम योगी हो उसकी अच्छे प्रकार अन्नादि और आसन आदि से सेवा करे। इसी का नाम मनुष्ययज्ञ है।

ब्रह्मयज्ञ सबसे पहले अथवा प्रातः काल के होम के पीछे करना चाहिए।

मनुष्य स्वयं भोजन करे या न करे पर बलिवैश्वदेव दोनों समय अवश्य करना चाहिए नहीं तो पाप का भागी बनता है।

अध्ययन से बढ़ कर यज्ञ और वेद को पढ़ाना रूप दान से बढ़ कर दूसरा दान नहीं है।

दक्षिणा-दान

यज्ञादि कामों में ब्रह्मा का आसन सर्वोच्च माना गया है। यदि ब्रह्मा के सिवा हवन करने का काम किसी दूसरे

ान् ने किया हो तो आधी दक्षिणा हवन करनेवाले को
। आधी ब्रह्मा को देनी चाहिए । यज्ञ का करनेवाला
ब्रह्मा और होता—हवन करनेवाले—का काम स्वयं ही
तो किसी पूर्ण विद्वान् को दक्षिणा दे देनी चाहिए।
ऽ का ऋत्विज यदि भले प्रकार पढ़ा लिखा हो और यदि
ऽ पास ही हों तो अपना कल्याण चाहनेवाला पुरुष
क्षिणा देने के समय इन दोनों को कभी न त्यागे अर्थात्
ोनों को दक्षिणा जरूर देनी चाहिए और दूसरों को भी,
क्षिणा देने के समय, गुरु और अपने विद्वान् पुरोहित से
लाह करके दे। यदि कुल-पुरोहित और गुरु दूर देश
हों तो इन दोनों के लिए उत्तम उत्तम चीज़ों का मन में
ङ्कल्प करके दूसरे मनुष्यों को दक्षिणा देनी चाहिए।

जिसके घर में एक मूर्ख हो और विद्वान् दूर हो तो
वद्वान् को ही दक्षिणा देनी चाहिए क्योंकि मूर्ख का तिर
स्कार गिना नहीं जाता।

विना पढ़े-लिखे का तिरस्कार नहीं समझा जाता
क्योंकि जलती हुई आग को छोड़ कर राख में आहुति देना
ठीक नहीं है।

१०—बृहस्पति-स्मृति

सब दानों में पृथ्वी का दान अच्छा है

इस स्मृति में राजा इन्द्र और उनके पुरोहित महा विद्वान् बृहस्पति का परस्पर संवाद है।

जब राजा इन्द्र, जिनमें बड़ी बड़ी दक्षिणायें दी गई थीं ऐसे सौ यज्ञ समाप्त कर चुके तब बृहस्पति से पूछने लगे कि हे भगवन्! ऐसा कौन सा दान है जिसके करने से मनुष्य को चारों ओर से सुख बढ़ता है। जो जो चीजें दी जायँ वे अक्षय हों और सबसे बढ़िया हों और वेदाभिमत समझी जाती हों उस दान को मुझे बतलाइए। तब इन्द्र के पुरोहित वाणी के पति और महान् विद्वान् बृहस्पतिजी ने उत्तर दिया कि हे इन्द्र! सोना, पृथिवी और गाय, इनका दान करनेवाला सब पापों से छूट जाता है। हे इन्द्र! जो मनुष्य पृथिवी का दान करता है उसने मानो सोना, चाँदी, कपड़े, मणि, रत्न इन सबका दान दे दिया।

जो हल से जोती गई हो, जिसमें बीज भी बोया गया हो और जो हरे अन्न से शोभायमान हो ऐसी पृथ्विवी का दान करनेवाला सदा सुखी रहता है।

जिस प्रकार पृथिवी पर बोये हुए बीज जमते हैं इसी प्रकार पृथिवी के दान से कामनाओं की सिद्धियाँ बढ़ती हैं।

हे इन्द्र! जैसे जल में पड़ी हुई तेल की एक बूँद भी फैलती जाती है इसी प्रकार पृथिवी का दान भी शाख़ शाख़ में जमता है।

अन्न का देने वाला सदा सुखी रहता है, वस्त्र का दाता रूपवान् होता है और हे राजन्! वह मनुष्य सब कुछ देनेवाला होता है जो पृथिवी का दान करता है।

जिस प्रकार दूध देने वाली गाय दूध देकर बछड़े को सन्तुष्ट करती है हे इन्द्र! इसी प्रकार अपने हाथ से दी हुई पृथिवी भी देनेवाले को पुष्ट तथा सन्तुष्ट करती है।

शङ्ख, राजगद्दी, छत्ता, प्राणी, वृक्षादि और उत्तम हाथी, हे इन्द्र! ये पृथिवी के दान के पुण्य हैं और स्वर्ग के फल हैं। पृथिवी के दान की सब वेदों मे प्रशंसा की है। पृथिवी का जो दान करता है उसके पिता, पितामह आदि खुश होते हैं कि हमारे कुल में पृथिवी का दान करने वाली सन्तान पैदा हुई है। यह हमारी भी रक्षा करेगा—हमें भी सुख पहुँचायेगा।

गाय, पृथिवी और विद्या ये तीन सबसे बड़े तथा अच्छे दान हैं। ये तीनों निःसन्देह दाता को पापों से पार कर देते हैं।

भूमि छीनने का निषेध

जो मनुष्य अन्याय से दूसरों की भूमि छीन लेते हैं और दूसरों से छिनवा लेते हैं वे दोनों ही छीनने और छिनवाने वाले अपने कुल को नष्ट करनेवाले हैं।

जो मन्द बुद्धि और अज्ञानी मनुष्य पृथिवी छीनने वाले को प्रेरणा (इशारा) करता है वह पशु आदि तिर्यग् योनि में पैदा होता है।

खेत छीनने वाले की तीन पीढ़ियाँ दुःख भोगती हैं।

होम, दान, तप, वेद का पढ़ना और जो कुछ पुण्य धर्म मनुष्य ने संचित किया है वह सब आधी अंगुल पृथिवी की सीमा छीन लेने से नष्ट हो जाता है।

गायों का रास्ता, गाँव की गली, श्मशान और तालाब कुआ गत इनका बिगाड़नेवाला नरक को जाता है।

कन्या के लिए झूठ बोलने में पाँच को, गाय के लिए झूठ बोलने में दस को, घोड़े के लिए झूठ बोलने में सौ को, पुरुष के लिए झूठ बोलने में हज़ार को, सोने के लिए पैदा हुए तथा पैदा होनेवाले सबका और पृथिवी के लिए झूठ बोलने में झूठ बोलनेवाला [illegible] मारता है। इस लिए पृथिवी के लिए कभी झूठ न बोलना चाहिए।

चाहे प्राण कंठ में आ जावें तो भी ब्राह्मण के धन में प्रीति न करनी चाहिए अर्थात् ब्राह्मण का धन कभी लेने की इच्छा न करनी चाहिए। किसी का धन ले लेना हला-हल विष है जिस की कोई दवा नहीं है। बुद्धिमान् कहते हैं कि विष, विष नहीं है किन्तु किसी का धन मार लेना सबसे बढ़ कर विष है। इससे किसी का धन कभी न मारना चाहिए।

मूर्ख को दान देने का निषेध

हे इन्द्र ! कुलीन और ग़रीब, जो वेद पढ़ा हो, सन्तोषी हो, नम्र हो, सब प्राणियों की भलाई करने वाला हो वेद का अच्छी तरह से अभ्यास करता हो, तपस्वी हो और इन्द्रियों का जीतने वाला हो ऐसे ब्राह्मण को दिया दान अक्षय्य पुण्य वाला होता है।

मिट्टी के कच्चे बर्तन में रक्खा हुआ दूध, दही, घी और शहद जैसे बर्तन की कमजोरी से नष्ट हो जाते हैं—सूख जाते हैं और वह बर्तन भी नष्ट हो जाता है—टूट जाता है—इसी प्रकार गाय, सोना, वस्त्र, अन्न, पृथिवी, तिल आदि का जो मूर्ख ब्राह्मण दान लेता है वह लकड़ी की तरह भस्म हो जाता है।

जिस पुरुष के घर में मूर्ख ब्राह्मण हो और पढ़ा लिखा कहीं दूर रहता हो तो पढ़े लिखे को ही दान दे, किन्तु मूर्ख का तिरस्कार न समझे।

जो पुरुष जबरदस्ती बिना कहे पृथिवी, गाय और स्त्री इनको छीन लेता है उसे ब्रह्महत्या लगती है। और राजा म दुग्धी ब्राह्मणों की प्रार्थना पर जो राजा छीन लेने वाले को सज़ा नहीं देता उस को भी ब्रह्महत्या लगती है।

हे इन्द्र! विवाह, दान और यज्ञ करने के समय जो मूर्ख विघ्न करता है वह मरने के बाद कीड़ा बनता है।

दान करने से धन और प्राणियों की रक्षा करने से जीवन बढ़ता है और हिंसा न करने वाला रूप, आरोग्य और ऐश्वर्य के फल भागता है।

सब वेदों को पढ़कर मनुष्य शीघ्र ही दुःख से छूटता पवित्र धर्म कर्म करता है और स्वर्ग पाता है।

११—पाराशर-स्मृति

शास्त्र का प्रस्ताव

देवदारु वृक्षों के वन में, हिमालय पर्वत के ऊपर, एकान्त स्थान में बैठे हुए व्यासजी से ऋषियों ने पूछा कि हे सत्यवती के पुत्र व्यासजी! कलियुग में मनुष्य की भलाई करनेवाला धर्म, पवित्रता और आचार हमको बताइए। ऋषियों के पूछने पर, शिष्यों के सहित अग्नि और सूर्य के समान बड़े तेजस्वी, श्रुति (वेद) और स्मृति (धर्म-शास्त्र) को भले प्रकार जानने वाले व्यासजी ऋषियों से बोले कि हम सब तत्त्वों को भले प्रकार नहीं जानते। हमारे पिता पराशरजी से इस विषय में पूँछिए। तब धर्म जानने की इच्छा करनेवाले सब ऋषियों के साथ व्यासजी बदरीनारायण को अपने पिता के पास गये। बदरीनारायण अत्यन्त मनोहर स्थान था जहाँ बहुत से ऋषि तपस्या किया करते थे। यह स्थान तीर्थ स्थान होने से अब भी प्रसिद्ध है और मनोहर है, मन्दिर अत्यन्त मनोहर बना हुआ है।

सत्ययुग त्रेता और द्वापर में मनुष्य का धर्म भिन्न भिन्न हो जाता अर्थात् बदलता रहता है। युग के अनुसार कलियुग में भी दूसरा धर्म हो जाता है।

सत्ययुग में तप, त्रेता में ज्ञान, द्वापर में यज्ञ और कलियुग में एक दान को ही लोग मुख्य कहते हैं अर्थात्—तप, ज्ञान, यज्ञ और दान ये धर्म के चार पैर माने गये हैं। उनमें सत्ययुगी तप को, त्रेतायुगी ज्ञान को, द्वापरयुगी यज्ञ को और कलियुगी धर्मात्मा मनुष्य दान को ही मुख्य कर्त्तव्य कर्म मानते हैं।

सत्ययुग में मनु के कहे हुए और त्रेता में गौतम के कहे हुए द्वापर में शङ्ख और लिखित के तथा कलियुग में पराशर के कहे हुए धर्म विशेष माने या बर्त्ताव में लाये जा सकते हैं।

सतयुग में धर्म हीन देश को और त्रेता में धर्म विरोधी गाँव को, द्वापर में धर्म विरोधी कुल को और कलियुग में अधर्म करने वाले को त्याग देना चाहिए। और सत्ययुग में अधर्मी के साथ बात चीत करने से, त्रेता में उसे देखने से, द्वापर में उस अधर्मी का अन्न लेकर और कलियुग में बुरा कर्म करने से पतित हो जाता है।

सत्ययुग में धर्मात्मा ब्राह्मण के पास जाकर, त्रेता में ब्राह्मण को अपने घर पर बुला कर, द्वापर में माँगने पर और कलियुग में जो सेवा करता है उसी को लोग दान देते हैं। दान के ये ही चार प्रकार, दर्जे, माने गये हैं।

विद्वान् ब्राह्मण के पास जाकर दान देना सत्ययुग में सर्वोत्तम है। पास जाकर दिया हुआ दान उत्तम है। अपने पास बुलाकर दिया हुआ दान मध्यम है और मांगने पर जो दान दिया जाता है वह निकृष्ट है। इससे कोई विशेष लाभ नहीं होता।

कलियुग में अधर्म से धर्म, झूठ से सत्य, चोरों से राजा, और स्त्रियों से पुरुष जीत लिए जाते हैं अर्थात् दब जाते हैं। अग्निहोत्र बन्द हो जाते और गुरु की पूजा नष्ट हो जाती है। कुमारी कन्याओं के सन्तान होने लगती है।

ब्राह्मणादि का सदाचार आदि धर्म

चारों वर्णों का जो आचार बतलाया गया है वही धर्म का लक्षण है उसी के अनुसार प्रत्येक वर्ण को अपना अपना नित्य प्रति बर्ताव करना चाहिए। जो आचाररहित होते हैं उनसे धर्म भी पराङ्मुख होता—पीठ फेर लेता—है।

जो छः कर्मों में लगे रहते हैं और दूसरे नित्य अतिथि का पूजन करते हैं और हवन करके भोजन किया करते हैं वे ब्राह्मण कभी दुःखी नहीं होते।

स्नान करके संध्या, जप, हवन, विधिपूर्वक वेद का पढ़ना, देवता का पूजन, अतिथि की सेवा और विश्वदेव ये छः कर्म मनुष्य को प्रति दिन करने चाहिए।

प्यारा हो या शत्रु हो, मूर्ख हो या पण्डित हो जो विश्वदेव के समय आजाय तो उसको अतिथि समझ कर

अच्छी तरह सत्कार करे। उस सत्कार से अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है।

जो दूर से चल कर आया हो, थक गया हो और वैश्वदेव के समय आया हो तो उसी को अतिथि समझना चाहिए। जो पहले से आकर ठहरा हुआ हो उसको अतिथि न समझना चाहिए।

एक गाँव में रहने वाले तथा मेली पुरुष को अतिथि कभी न समझना चाहिए। जो सदा न आता हो उसी को अतिथि कहा गया है।

वैश्वदेव के समय आये हुए अतिथि का स्वागत आदि से सत्कार करे और उसको बैठने को अच्छा आसन तथा हाथ-पैर धोने को पानी, श्रद्धापूर्वक अन्न दे, प्रिय बोले, अच्छी अच्छी बातें कर और जाने के समय पीछे पीछे चल कर कुछ दूर तक पहुँचा कर लौटे।

जिस के घर से अतिथि निराश होकर लौट जाता है उसके घर विद्वान् आना पसन्द नहीं करते। जिसके घर से अतिथि निराश होकर—बिना सत्कार पाये—लौट जाता है उसका बड़े बड़े यज्ञों का करना भी व्यर्थ है।

अच्छे खेत में बीज बोना चाहिए और सुपात्र को दान देना चाहिए। क्योंकि अच्छे खेत में बोया हुआ बीज तथा सुपात्र को दिया हुआ दान कभी नष्ट नहीं होता।

अपने मन में अतिथि को देवता समझना चाहिए। क्योंकि अतिथि देवताओं का रूप माना गया है।

संन्यासी को सोना, ब्रह्मचारी को पान और चोरों को अभय (निडर) दान देने वाला नरक भोगता है।

चोर हो या चण्डाल हो और चाहे अपना शत्रु ही हो तो भी वैश्वदेव के समय घर पर आये हुए का सत्कार करना पुण्यफल का देनवाला होता है।

जो ब्राह्मण, समस्त वेदों के जानने वाले अतिथि का सत्कार नहीं करता, वह अतिथि को न दिये हुए अन्नजल को खा कर पाप का भागी होता है।

जिस गाँव में, व्रतों को न करने वाले तथा वेद को न पढ़े हुए ब्राह्मण भिक्षा माँगते हैं, उस गाँव को राजा दण्ड दे, क्योंकि वह गाँव मानो चोरों को भाग देता है।

क्रोधी मनुष्य की नाईं शस्त्र को हाथ में लिये हुए प्रजा की रक्षा करता हुआ क्षत्रिय शत्रुओं की सेनाओं को जीत कर, धर्मानुसार प्रजा का पालन करे। क्योंकि लक्ष्मी कुलपरम्परा से नहीं आती और अक्षरों से भी नहीं जानो जाती किन्तु अपने शस्त्र-बल से शत्रुओं को वश कर पृथिवी का भोग करे। क्योंकि पृथिवी शूर-वीरों के भोगने योग्य बनाई गई है।

राजा को चाहिए कि जैसे माली बगीचे के वृक्षों की रक्षा करता हुआ फूल ही तोड़ता है, वैसे ही राजा भी प्रजा की रक्षा करता हुआ उससे धनादि पदार्थ लिया करे। किन्तु कोयला बनानेवाला जिस प्रकार वृक्षों को जड़ से

अच्छे व्रत, नियम, आचार विचार करनेवाला ब्राह्मण, तथा इसी प्रकार का अतिथि और प्रति दिन जो वेद को पढ़ता है ये तीन यदि रोज रोज आवें तो भी अर्याम ही समझे जाते हैं।

वैश्वदेव करने के समय यदि भिक्षुक घर पर आ जाय तो वैश्वदेव के वास्ते अलग अन्न निकाल कर उसको भिक्षा देकर चलताऊ कर दे।

सन्यासी और ब्रह्मचारी ये दोनों पके हुए भोजन के अधिकारी माने गये हैं। इन दोनों को, वक्त पर आजाने पर जो भोजन न करा के स्वयं भोजन कर लेता है वह चान्द्रा यण व्रत करने का प्रायश्चित्तीय हो जाता है।

सन्यासी और ब्रह्मचारी को भिक्षा अवश्य देनी चाहिए। वैश्वदेव के भूल जाने के दोष को भिक्षुक दूर कर सकता है पर भिक्षुक के लौट जाने से हुए पाप को वैश्वदेव दूर नहीं कर सकता। अर्थात् भिक्षुक को भिक्षा अवश्य देनी चाहिए।

द्विजों में जो पुरुष वैश्वदेव किये ही बिना भोजन कर लेते हैं, उनका जीवन निष्फल है और अन्ततः वे नरक भोगते हैं।

जो वैश्वदेव करके अतिथि का भी सत्कार नहीं करता वह नरक भोगता तथा कौए की योनि पाता है।

शिर में पगड़ी बाँध कर, दक्षिण दिशा की ओर मुँह करके और बायें पैर पर हाथ रख कर भोजन करना मना है।

संन्यासी को सोना, ब्रह्मचारी को पान और चोरों को अभय (निडर) दान देने वाला नरक भोगता है।

चोर हो या चण्डाल हो और चाहे अपना शत्रु ही हो तो भी वैश्वदेव के समय घर पर आये हुए का सत्कार करना पुण्यफल का देनेवाला होता है।

जो ब्राह्मण, समस्त वेदों के जानने वाले अतिथि का सत्कार नहीं करता, वह अतिथि को न दिये हुए अन्नजल को खा कर पाप का भागी होता है।

जिस गाँव में, व्रतों को न करने वाले तथा वेद को न पढ़े हुए ब्राह्मण भिक्षा माँगते हैं, उस गाँव को राजा दण्ड दे, क्योंकि वह गाँव मानों चोरों का भाग देता है।

क्रोधी मनुष्य की नाई शस्त्र को हाथ में लिये हुए प्रजा की रक्षा करता हुआ क्षत्रिय शत्रुओं की सेनाओं को जीत कर, धर्मानुसार प्रजा का पालन करे। क्योंकि लक्ष्मी कुलपरम्परा से नहीं आती और जेवरों से भी नहीं जानी जाती किन्तु अपने शस्त्र-बल से शत्रुओं को दबा कर पृथिवी का भोग करे। क्योंकि पृथिवी शूर-वीरों के भोगने योग्य बनाई गई है।

राजा को चाहिए कि जैसे माली बगीचे के वृक्षों की रक्षा करता हुआ फूल ही तोड़ता है, वैसे ही राजा भी प्रजा की रक्षा करता हुआ उससे धनादि पदार्थ लिया करे। किन्तु कोयला बनानेवाला जिस प्रकार वृक्षों को जड़ से

काट डालता है वैसे प्रजा की जड़ न उखाड़ डाले—उसे बिगाड़ न दे।

लाभ का काम करना, रत्न आदि की परीक्षा करना, वणिज-व्यापार करना, गायों की अच्छी रक्षा रखना, खेती करना यह वैश्य की वृत्ति है।

शूद्रों का परम धर्म द्विजों की सेवा करना है। इससे भिन्न जो कुछ शूद्र करता है वह निष्फल है।

नमक, शहद, तेल, दही, दूध, मट्ठा, घी ये चीज़ें शूद्र से दूषित नहीं हो जाती। इनको शूद्र सब जातियों में बेच सकता है।

मदिरा और मांस को बेचना, अभक्ष्य का भक्षण करना और गमन करने के अयोग्य स्त्री के साथ गमन करके शूद्र उसी समय पतित हो जाता है।

खेती करने का विशेष विचार

अपने छः कर्मों को करता हुआ ब्राह्मण खेती भी कर सकता है। ब्राह्मण भूखे, प्यासे, थके और अङ्गहीन बैलों को खेती के काम में न लगावे।

तिल और छः रस ब्राह्मण को न बेचना चाहिए।

जल्लाद, मछियों को मारनेवाला, हिरणादि को मारने वाला चिड़ीमार, और जो दान न दे और खेती करता हो तो ये पाँचों एक ही तरह के पापी माने गये हैं।

ओखली, चक्की, चूल्हा, जल का घड़ा और बुहारी ये पाँच हत्याये गृहस्थ को रोज़ रोज लगती हैं। वैश्वदेव (देवयज्ञ), बलि (भूतयज्ञ), भिक्षा देना, गाय को ग्रास, और हन्तकार नाम अतिथि यज्ञ, इन पाँच यज्ञों को जो प्रति दिन करता है उसको ऊपर की लिखी पाँच हत्यायें नहीं लगती।

वृक्षों के काटने, पृथ्वी के खोदने, कृमि और कीड़ों के मारने से जो पाप खेती करनेवाले को लगता है वह यज्ञ करने से उन पापों से छूट जाता है।

जिसकी अन्न की राशि तैयार हुई हो और वह पास में आये हुए भिक्षुक को भिक्षा न दे तो पाप का भागी होता है।

जो छटा भाग राजा को और इक्कीसवाँ भाग देवताओं को और तीसवाँ भाग परोपकार में खर्च करता है वह खेती के दोष से लिप्त नहीं होता।

क्षत्रिय भी खेती करे तो देवता और ब्राह्मणों की पूजा करे। इसी तरह वैश्य और शूद्र भी खेती, वाणिज्य-व्यापार और कारीगरी करे, पर शूद्र का विशेष धर्म यही है कि वह द्विजों की सेवा को ही परम धर्म समझे।

जन्म-मरण का शौच

जन्म सूतक में ब्राह्मण दश दिन में, क्षत्रिय बारह दिन में, वैश्य पन्द्रह दिन में और शूद्र एक महीने में शुद्ध होते हैं।

बकरी, गौ, भैंस, नवसूतिका (जिसके प्रथम ही सन्तान पैदा हुई हो) ब्राह्मणी और पृथिवी पर ठहरा हुआ जल ये दश दिन में शुद्ध होते हैं।

जो पिता के धन के भागी हैं अर्थात् एक ही माँ-बाप के सन्तान हों और रहते अलग अलग हों तो उन सबको जन्म और मरण का सूतक एक सा लगता है।

दोनों प्रकार के सूतकों में सूतकवालों का अन्न दश दिन तक नहीं खाना चाहिए। सूतक में दान देना, दान लेना, ब्रह्मयज्ञ और हवन भी नहीं करना चाहिए।

एक गोत्रवालों में चौथी पीढ़ी तक ही सूतक होता है। क्योंकि अपने वंश का पाँचवाँ पुरुष बाँट हो जाने से पृथक् हो जाता है।

चौथी पीढ़ी तक दस दिन, पाँचवीं पीढ़ी में छः दिन छठी पीढ़ी में चार दिन और सातवीं पीढ़ी में तीन दिन में शुद्धि होती है।

सींगवाले पशुओं से या अग्नि से मरने में या दूसरे देश में मरने से, बालक के मरने में और अपने परिवार के संन्यासी के मरने में उसी समय शुद्धि हो जाती है।

दस दिन बीत जाने पर परदेश में सगोत्रों का मरना सुने तो तत्काल ही मय कपड़ों के स्नान करने से शुद्धि मानी गई है। और छः महीने के बाद सुनने पर तीन दिन में, छः महीने में सुने तो एक दिन रात में और एक वर्ष के बीत जाने पर मृत्यु सुने तो तत्काल ही शुद्धि हो जाती है।

यदि दूर देश में अकाल मृत्यु हो जाय और मरने की तिथि मालूम न हो तो कृष्ण-पक्ष में अष्टमी, अमावास्या और एकादशी में शुद्धि का कृत्य करना चाहिए।

जो बच्चा दाँतों के निकलने से पहले या पैदा होते ही मर गया हो तो उसका अग्नि-दाह और अशौच आदि कुछ भी न करना चाहिए।

यदि बच्चा गर्भ में ही मर जाय या गर्भ गिर गया हो तो जितने महीने का गर्भ हो उतने ही दिन सूतक मानना चाहिए।

चार महीने के गिरने वाले गर्भ का नाम स्राव है। पाँच और छः महीने के बाद गिरे तो उसको गर्भपात कहते हैं। इसके आगे प्रसूति होती है, प्रसूति का सूतक दस दिन का होता है।

स्त्रियों के प्रसव समय में यदि जीती हुई सन्तान पैदा हो तो चार पीढी तक के गोत्रवालों को अशौच लगता है और मरी हुई सन्तान पैदा हो तो सिर्फ माता को अशुद्धि लगती है।

यदि रात में मरी हुई सन्तान पैदा हो तो सूर्य का उदय होने के पहले बीते हुए दिन से ही गणना करनी चाहिए।

दाँतों के निकलने से पहले जो बच्चा मर जाय तो उसी समय और चूड़ाकर्म से पहले मर तो एक दिन रात और

यज्ञोपवीत से पहले मरे तो तीन दिन का अशौच होता है। इससे आगे दस दिन का होता है।

जीती हुई सन्तान पैदा होकर मर जाय तो दस दिन और मरा हुआ पैदा हो तो तत्काल शुद्धि होती है। चूड़ाकर्म से पहले कन्या मरे तो तत्काल, सगाई होने के पीछे मरे तो एक दिन रात और वाग्दान होने पर सप्तपदी से पहले मरे तो पितृगोत्र वालों को तीन दिन रात की शुद्धि माननी चाहिए।

जिनके घर में हवन करता हुआ ब्रह्मचारी रहता हो और वह मर जाय तो जिन लोगों ने उसको छुआ नहीं है उनको सूतक नहीं लगता।

मुर्दे का अशौच सात पीढ़ी तक सबको और जन्म सूतक माता पिता को ही लगता है और इन दोनों में माता ही विशेष कर अशुद्ध होती है। पिता तो नहाने के बाद शुद्ध हो जाता है।

जो अपना गोत्री और कुटुम्बी न हो तो उसके साथ श्मशान भूमि में जाकर ब्राह्मण मुर्दे का दाह हो जाने पर नहाने के बाद प्राणायाम करने से शुद्ध हो जाता है।

स्त्री-पुरुषों का धर्म

जो पतित न हुई हो ऐसी निर्दोष अपनी स्त्री को जो पुरुष जवानी की उम्र में छोड़ देता है वह सात जन्म तक

स्त्री की योनि में जन्म लेता और वह बार बार विधवा होती है।

अपना पति दरिद्री, रोगी या मूर्ख ही हो तो भी जो स्त्री उसका अपमान करती है वह मरने के बाद साँपिन बनती है और बार बार विधवा होती है।

पति के जीते हुए जो स्त्री उपवास तथा व्रत करती है वह मानों अपने पति की उम्र घटाती है और आप नरक में जाती है।

यह मनुजी ने बतलाया है कि जो स्त्री अपने पति को पूछे बिना व्रत करती है वह सब राक्षसों को मिलता है।

जो स्त्री अपने सजातीय बांधवों के साथ दुष्ट आचरण या गर्भपात करती हो उसके साथ पति कभी न बोले।

जो ब्रह्महत्या का पाप है उससे दूना गर्भ के गिराने में है। गर्भ गिराने वाली स्त्री का प्रायश्चित्त कुछ भी नहीं है किन्तु पति को चाहिए कि वह उसको छोड़ दे।

उस गर्भपात करनेवाली स्त्री को छोड़ देने से श्रौत स्मार्त्त अग्निहोत्र चाहे छूट जाय, कुछ चिन्ता न करे किन्तु उस स्त्री के साथ अग्निहोत्र करनेवाला धर्म का विरोधी होने से वह चाण्डाल माना जायगा।

विद्वानों की सभा का विचार

पाप करनेवाले को यदि जल्दी ही पाप का निश्चय हो जाय तो प्रायश्चित्त के लिए विद्वानों की सभा में हाजिर

हुए बिना भोजन न करे। जहाँ सभा बनी हुई न हो वहाँ पर भी जो पहले भोजन कर लेता है वह मानो पाप का बढ़ाता है। यदि सन्देह हो कि मेरा यह काम पाप योग्य है या नहीं ? तो निश्चय होने के समय तक भोजन न करे और अपराध को निश्चय करने में भूल न करे किन्तु जिस तरह सन्देह मिट सके वैसा ही करना चाहिए। किये हुए पाप को कभी छिपाना न चाहिए क्योंकि छिपाया हुआ पाप अधिक बढ़ता है। पाप-कर्म छोटा हो या बड़ा, धर्म के जाननेवालों के सामने निवेदन कर दे और प्रायश्चित्त पूछे। क्योंकि वे विद्वान् लोग ही पाप करनेवाले रोगियों के वैद्य—दया करने और पापों का नाश करने वाले—हैं।

प्रायश्चित्त के समय लज्जायुक्त हो, सत्य धर्म में तत्पर और बारम्बार नम्रता का धारण करनेवाला मनुष्य शुद्धि को प्राप्त होता है।

चुपचाप हो कर, सब कपड़ों के स्नान करके, भीगे कपड़े पहने हुए, सावधान हो कर धर्म की सभा—न्याया-लय में आना चाहिए।

जो सन्ध्या आदि शुभ कर्म नियम के साथ न करते हों, जो वेद मन्त्रों को न जानते हों, जो ब्राह्मण नाम मात्र के हों ऐसे चाहे हज़ारों ही इकट्ठे हों तो भी वह धर्म की सभा नहीं समझनी चाहिए।

धर्म का मर्म न जानने वाले अज्ञानी मूर्ख ब्राह्मण जो

प्रायश्चित्त आदि बतलाते हों वह पाप सौ गुना हो कर उन धर्म की व्यवस्था करनेवालों को प्राप्त होता है।

जो धर्म शास्त्रों को न जान कर प्रायश्चित्त करता है वह पापी तो पवित्र हो जाता है पर उस प्रायश्चित्ती का प्रायश्चित्त करानेवाले को लगता है।

वेदों को अच्छी तरह जाननेवाले जो बतलावें वही धर्म समझना चाहिए और दूसरे हजार भी बतलावें तो भी वह धर्म न मानना चाहिए।

प्रमाण के मार्ग को खोजते हुए जो विद्वान् धर्म की व्यवस्था बतलाते हैं उन सत्य कहनेवालों से पाप दूर भागता है।

जिस प्रकार पत्थर पर पड़ा हुआ पानी हवा और सूर्य के तेज से शुद्ध हो जाता है इसी प्रकार धर्म-सभा की आज्ञा से किये हुए प्रायश्चित्त से उस पापी का पाप भी नष्ट हो जाता है।

वह पाप न तो करने वाले पर रहता और न सभा पर जाता किन्तु हवा और सूर्य के मेल से पत्थर पर पड़े हुए जल की नाई नष्ट हो जाता है।

वेद के जानने वाले अग्निहोत्री जिसमें चार या तीन तक भी हों तो उसको परिषत्—धर्मसभा—कहते हैं। अथवा जो अग्निहोत्री न हों किन्तु वेद-वेदाङ्गों का तत्त्व जाने

प्रकार समझते-बूझते हों ऐसे तीन या पाँच विद्वानों की भी परिषद् हो सकती है।

कुछ न बोलने वाला—मौनव्रत रखने वाला—बहुत कम बोलने वाला तपस्वी मुनि आत्मविद्या—वेदान्तविद्या—का जानने वाला, द्विजों को यज्ञ कराने वाला और वेद में बतलाये हुए नियमों को ब्रह्मचर्य द्वारा समाप्त करके जिस ने समावर्तन किया हो ऐसे एक विद्वान् की भी परिषद् हो सकती है। ऐसे विद्वानों के सिवा जो ब्राह्मण केवल नाम धारण करने वाले हैं वे चाहे हजार गुने भी हों तो उनकी धर्मसभा नहीं हो सकती।

जिस प्रकार काठ का हाथी और चाम का नक़ली हिरन, हिरन नहीं कहा जा सकता, इसी प्रकार जो वेद को बिना पढ़े लिखे ब्राह्मण हैं, ये तीनों ही सिर्फ़ नाम धारण करने वाले हैं।

जिस प्रकार निर्जन (जिसमें कोई मनुष्य न रहता हो) गाँव, जिस प्रकार जल के बिना कुआँ—अँधेरा, और जिस प्रकार बिना आग के राख में होम करना है वैसे ही वेद का न जाननेवाला ब्राह्मण भी शून्य मात्र है।

जिस प्रकार नपुंसक और बाँझ गाय वृथा हैं और जिस प्रकार मूर्ख ब्राह्मण को दान देना वृथा है इसी प्रकार वेद हीन ब्राह्मण भी वृथा है।

जिस प्रकार तसवीर बनानेवालों की चित्रकारी अनेक प्रकार के रंगों से धीरे धीरे अत्यन्त शोभायमान

चमकीली होती जाती है, इसी प्रकार मन्त्रों के द्वारा हुए अनेक संस्कारों से ब्राह्मणपन भी उज्ज्वल—प्रकाशमान् हो जाता है।

जो विद्या और तप से रहित नामधारी ब्राह्मण प्रायश्चित्त कराते हैं वे सब पापों के करने वाले हैं और अन्त में नरक भोगते हैं।

जो ब्राह्मण वेद पढ़े लिखे हैं और नियमपूर्वक पाँचों महायज्ञों को करते हैं वे ही सच्चे ब्राह्मण हैं।

गायत्री से रहित ब्राह्मण शूद्र से भी अधिक अशुद्ध होता है और गायत्रीरूप वेद का तत्त्व जानने वाले ब्राह्मण की लोग पूजा करते हैं।

चारों वेदों को जानने वाले चार विद्वान्, एक न्याय का जानने वाला नैयायिक, एक वेदाङ्गों का जानने वाला, एक धर्म-शास्त्रों का जानने वाला और ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ इन तीनों आश्रमों वाले मुखिया, इन धर्मज्ञ विद्वानों की धर्मसभा कहाती है।

धर्मसभा का यह कर्त्तव्य है कि वह राजसभा की आज्ञा लेकर किसी प्रायश्चित्त आदि की धर्म-व्यवस्था करे। और यदि किसी का छोटा ही कसूर हो और प्रायश्चित्त भी मामूली ही हो तो राजा की बिना आज्ञा लिये भी पण्डित सभा निश्चय कर सकती है।

अगर विद्वानों का उल्लङ्घन करके राजा स्वयं प्रायश्चि

सीय पाप का फैसला करना चाहे तो वह पाप सौ गुना होकर राजा को लगता है।

प्रायश्चित्त किसी अच्छे प्रतिष्ठित देव-मन्दिर आदि स्थान पर करना चाहिए। प्रायश्चित्त करानेवाला विद्वान् भी अपना कृच्छ्र व्रत—प्रायश्चित्त—करके वेद की माता गायत्री का जप करे।

प्रायश्चित्त करनेवाला सब चोटी के बालों का मुण्डन करा के तीन समय स्नान करे। रात को गायों के संग गोशाला में रहा करे और दिन में चरने के वास्ते जङ्गल में जानेवाली गायों के पीछे पीछे जङ्गल में घूमा करे।

अत्यन्त गरमी के समय में, वर्षा में, शीतकाल में और ज़ोर की आँधी में अपने बचने का उपाय तब करना चाहिए जब पहले अपनी शक्ति भर गायों की रक्षा करले।

अपने घर में या दूसरे के घर में, खेत में या खलियान में खाती हुई गाय को न तो ख़ुद हटावे और न दूसरे मनुष्य से हटाने के लिए कहे और दूध पीते हुए बछड़े को भी किसी को न बतावे।

गाय के जल पीने पर स्वयं जल पीवे, उसके बैठने पर स्वयं बैठ और गड्ढा वगैरह में गिरी पड़ी या कीचड़ में फँसी हुई गाय को अपनी ताक़त भर उठावे और निकाले।

जो मनुष्य ब्राह्मण और गायों की रक्षा करने के लिए प्रयत्न करता—तकलीफ़ सहता है—वह महा पापों से छूट जाता है।

प्रायश्चित्ती को जूता और छाता धारण न करना चाहिए। वह जङ्गल में रह कर नदी आदि में स्नान किया करे और निर्वाह के लिए गाँव में आ कर भिक्षा माँगा करे। भिक्षा माँगने के समय अपना पाप अच्छी तरह ज़ाहिर करना चाहिए।

भक्ष्याभक्ष्य विचार

ब्यानी हुई गाय का दस दिन के पहले दूध न पीना चाहिए। जो पीता है वह और सफ़ेद लहसुन, बैगन, गाजर, प्याज, वृक्षों का गोंद, देव धन, कठफूल, ऊँटनी का दूध, भेड़ का दूध, इन चीज़ों को जिस ब्राह्मण ने बिना जाने खा पी लिया हो तो वह तीन उपवास करके और पंच-गव्य के पीने से शुद्ध होता है।

जो क्षत्रिय और वैश्य बाहरी और भीतरी सब प्रकार की शुद्धि नियमपूर्वक रखते हुए सन्ध्या और पंचमहा-यज्ञ आदि ठीक ठीक करते हों तो उनके घर में देव, पितर-सम्बन्धी कामों के समय ब्राह्मणों को सदा भोजन कराना चाहिए।

घी, दूध, तैल और गुड़ की पकाई हुई चीज़ें पवित्र शूद्र के घर की भी ब्राह्मण खा सकता है।

जो मद्य मांस खाने वाला और नीच कर्मों का करने कराने वाला शूद्र हो तो उसको चाण्डाल के समान नीच समझ कर ब्राह्मण दूर से त्याग दे।

जो मद्य, मांस न खाते हों और जो द्विजों की सेवा करते हों और अपने कर्त्तव्य कर्म में लगे हुए हों ऐसे शूद्रों को कभी न छोड़ना चाहिए।

१२—व्यास-स्मृति

शास्त्र का प्रस्ताव

काशी में सुख-पूर्वक बैठे हुए तपस्वी वेदव्यासजी के पास आकर मुनियों ने वर्णव्यवस्था-सम्बन्धी धर्म पूछे। मुनियों के पूछने पर बुद्धिमान् वेदव्यासजी ने वेदार्थ-गर्भित धर्मशास्त्र का स्मरण करके और प्रसन्न हो कर कहा कि सुनो:—

जिस विषय में श्रुति, स्मृति और पुराण का आपस में विरोध दिखलाई पड़े वहाँ वेद का प्रमाण समझना चाहिए। स्मृति और पुराण में विरोध होने पर स्मृति को उत्तम मानना चाहिए—स्मृति में बतलाया हुआ कर्म करना चाहिए।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीन वर्ण द्विजाति कहाते हैं। विशेष कर यही तीनों वर्ण वेद, स्मृति और पुराणों में बतलाये हुए धर्म कर्म को भले प्रकार कर सकते हैं।

सोलह संस्कार

संस्कार सोलह होते हैं व ये हैं—१—गर्भाधान, २—पुंसवन, ३—सीमन्त, ४—जातकर्म, ५—नामकरण, ६—निष्क्रमण, ७—अन्नप्राशन, ८—मुण्डन, ९—कर्णवेध १०—यज्ञोपवीत, ११—वेदारम्भ, १२—केशान्त, १३—समावर्तन, १४—विवाह, १५—आवसथ्याधान, १६—गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि इन तीनों श्रौत अग्नियों का स्थापन। ये सोलह संस्कार कहाते हैं। कर्णवेध तक जो नौ संस्कार हैं वे कन्या के बिना मन्त्र होते हैं। विवाह कन्या का भी मन्त्रों से ही हुआ करता है। कर्णवेध तक नौ और एक विवाह ये दश संस्कार शूद्रों के बिना वेद मन्त्रों के होने चाहिएँ।

गर्भाधान पहले गर्भस्थापन के समय होता है। तीन महीने का जब गर्भ हो जावे तब पुंसवन-संस्कार करना चाहिए। आठवें महीने में सीमन्तोन्नयन संस्कार करे। संतान के पैदा होने पर जात-कर्म, ग्यारहवें दिन नामकरण, चौथे महीने में निष्क्रमण अर्थात् घरसे बाहर बच्चे को निकाले। छठे महीने अन्न प्राशन और मुण्डन कुल की रीति के अनुसार करने चाहिएँ। मुण्डन हो जाने के बाद बच्चे का कर्ण-वेध (कर्णछेदन) संस्कार करना चाहिए। गर्भ से लेकर आठवें वर्ष में ब्राह्मण का, ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रिय का और बारहवें वर्ष में वैश्य के बच्चे का यज्ञोपवीत (जनेऊ) संस्कार हो जाना चाहिए।

तीनों वर्णों के यज्ञोपवीत का जो समय बतलाया गया है उससे दूने से अधिक समय बीत जाये और संस्कार न हुआ हो तो वे तीनों वर्ण के बालक वेद के मत से पतित 'व्रात्य' हो जाते हैं। तब उनको व्रात्यस्तोम प्रायश्चित्त करना चाहिए।

द्विजातियों के दो जन्म माने गये हैं। उनमें पहला माता से और दूसरा जन्म गुरु से। गुरु से वेदों की माता गायत्री को विधिपूर्वक ग्रहण करने से होता है।

इस प्रकार संस्कारों के होने पर मनुष्य द्विजत्व को प्राप्त होता है और दुराचारादि दोषों से निवृत्त हो कर श्रुति-स्मृति के पढ़ने योग्य बनता है।

ब्रह्मचारी के नियम-धर्म

यज्ञोपवीत हो जाने पर गुरु-कुल में सावधान हो कर बालक को रहना चाहिए और दण्ड, कौपीन, जनेऊ, मृगछाला और मेखला—कधनी—ये सब शास्त्रों में बतलाये हुए ब्रह्मचर्य्य के चिह्न हैं। इनको सदा धारण करना चाहिए।

फिर अच्छे दिन में—अच्छे मुहूर्त में—गुरुजी की आज्ञा लेकर, मन्त्रों से समिदाधान कर तथा ओङ्कार और गायत्री को याद करके गुरु से अपना वेद पढ़ना शुरू करे।

'द्विज ब्रह्मचारी शौच तथा आचार को अच्छी तरह जानने के लिए गुरु से धर्मशास्त्र पढ़े और धर्मशास्त्र में बत

लाये हुए कर्म को गुरु की आज्ञा के अनुसार भले प्रकार किया करे। फिर अपने पूज्य वृद्धों को नमस्कार करके गुरु का सहारा ले और वेद पढ़ने के लिए होशियारी से गुरु के हित का बर्ताव करना चाहिए।

बुराई करने पर भी गुरु के सामने न बोले और गुरु के धमकाने पर भी कहीं चला न जाना चाहिए।

किसी के साथ द्रोह करना, दूसरों की चुगली करना, हिंसा अर्थात् दूसरों को सताना, सूर्य को बिना मतलब देखना, तौर्यत्रिक (गाना, बजाना, नाचना), झूठ बोलना, उन्माद करना, दूसरों की बुराई करना, ॲंघर पहनना, अंजन लगाना, उबटन करना, शीशा देखना, पुष्प माला पहनना, चन्दन आदि सुगन्धित चीज़ों का लगाना स्त्री का स्मरण करना, देखना और छूना आदि, वृथा इधर उधर घूमना, और लालच करना, इनको ब्रह्मचारी छोड़ दे। जब दुपहर हो तब गुरु की आज्ञा लेकर आप ही चञ्चलता को छोड़ कर, जिनके उत्तम आचरण और वेदाध्ययन होता हो और जो पंचमहायज्ञादि शुभ कर्म करते हों ऐसे उत्तम ब्राह्मण आदि द्विजों के घर से ब्रह्मचारी भिक्षा माँग कर लाये। लाई हुई भिक्षा का ग्रास अमृत के समान संस्कार करे। फिर दुपहर का कृत्य करके गुरु की आज्ञा लेकर विधि-पूर्वक भोजन करे और एक घर की भिक्षा का अन्न और उच्छिष्ट—बचा हुआ अन्न—कभी न खाये। यदि खाये तो आचमन करना चाहिए।

नियम में रहता हुआ ब्रह्मचारी भिक्षा में भोजन के सिवा धनादि पदार्थ किसी के आदर या आग्रहपूर्वक देने पर भी स्वीकार न करे। और शुद्ध पुरुष के घर पर न्योता देने पर भी बिना गुरु की आज्ञा के कभी भोजन न करे।

यदि ब्रह्मचर्य्य के सब नियम ब्रह्मचारी ठीक ठीक करता हो और किसी प्रकार की बाधा न होती हो तो एक भी शुद्ध गृहस्थ के घर भोजन कर सकता है।

रोज़ विधि-पूर्वक अग्निहोत्र आदि काम करके गुरु की सेवा करनी चाहिए और गुरु को नमस्कार करके उनकी आज्ञा लेकर सोना चाहिए।

इस तरह रोज़ अभ्यास करता हुआ ब्रह्मचारी व्रतों को करे और सदा दूसरे के हित की बात और प्यारी वाणी बोले।

जो ब्रह्मचारी विधि-पूर्वक वेदों को पढ़ता है वह मानों दूध, अमृत, मधु और घी से देवताओं को प्रसन्न करता है। इसलिए अनध्याय (छुट्टी) का दिन छोड़ कर अच्छी तरह वेद को पढ़े और गुरु की आज्ञा का पालन करता हुआ वेद के अंग व्याकरण आदि अनध्याय के दिनों में भी पढ़ सकता है।

नियमों में व्यतिक्रम होने से वेद का पढ़ना ठीक नहीं हो सकता। इसलिए अहङ्कार छोड़ कर ऐसा बर्ताव करे कि नियम खण्डित न हो। नियम अच्छी तरह निभाने

से ब्रह्मचारी को इस लोक और परलोक में अभीष्ट
सुख की प्राप्ति होती है।

जो यज्ञोपवीत संस्कार से लेकर मरने तक इन व्रतें
को करता रहता है वह नैष्ठिक ब्रह्मचारी ब्रह्म सायुज्य मुक्ति
को प्राप्त होता है।

ग्रन्थों में कहे हुए केशान्त संस्कार तक व्रत करत
परोपकार की इच्छा से गृहस्थाश्रम की इच्छा करता हुआ
द्विज, तीनों वेदों को, या दो वेदों को, या एक वेद को
जल्दी समाप्त करके, गुरु की आज्ञा से, गुरु को दक्षिणा
आदि से सन्तुष्ट करके, विधि-पूर्वक समावर्तन-संस्कार करे।

गृहस्थ के विवाह आदि धर्म

दूसरे गृहस्थ आश्रम की इच्छा से इस प्रकार आदर्श
रूप को प्राप्त हुआ द्विज शुद्ध वंश में पैदा हुई स्त्री के
विवाह के लिए खोज करे।

विवाह ऐसी स्त्री के साथ करना चाहिए जिसके कुल
वगैरह कोई बड़ा असाध्य या कष्टसाध्य रोग न हो, शुद्र
कुल की न हो, जिसका बाप बिना धन लिये विवाह करना
चाहता हो, अपने वर्ण की हो अपने प्रवर की न हो तथा
जो अपने माता-पिता के गोत्र की न हो, जिसका पहले
किसी पुरुष के साथ विवाह न हुआ हो, जो अधिक भारी
न हो, शुभ लक्षणों वाली हो, अच्छी हो और जिसके कुल
में पूर्वज विख्यात और कुलीन हों।

पुत्र का कुल भी अच्छे प्रकार प्रतिष्ठित हो और लड़की अच्छे आचरण वाले पुरुष की हो और जो अपनी कन्या का विवाह करना चाहता हो तो धर्मानुसार शास्त्र की विधि से विवाह कर के।

ब्राह्म-विवाह की विधि से विवाह करना चाहिए। और अगर ब्राह्म-विवाह न हो सकता हो तो दैव आदि विवाहों की विधि से विवाह करना चाहिए।

पिता, पितामह, भाई, चाचा, कुटुम्ब के मनुष्य और माता इनमें से पहले पहले के न होने पर अगला अगला कन्या का विवाह कर दे। यदि इनमें से कोई भी न हो तो कन्या आपही योग्य पति के साथ विवाह कर ले।

"मैं तुमको दूँगा और मैं उसको ग्रहण करूँगा" इस प्रकार विवाह के समय की परस्पर प्रतिज्ञा कर के वर और कन्या का देनेवाला यदि प्रतिज्ञा पूरी न करे तो वह राजदण्ड का भागी होता है।

जो स्त्री दूषित न हो उसको त्यागनेवाला निर्दोष कन्या को दोष लगानेवाला, ये दोनों ही राजदण्ड के भागी होते हैं।

स्त्री और पुरुष मिल के यह एक ही शरीर पहले था और अब है, जिसको ब्रह्मा जी ने स्त्री, पुरुष रूप दो भागों में बाँटा है। आधे शरीर से पति और आधे से स्त्री हुई है यह वेद में अच्छी तरह लिखा है। इसलिए जब एक पुरुष

स्त्री के साथ विवाह न करे तब तक आधा ही रहता है। इसीलिए स्त्री अर्द्धांगिनी कहाती है।

वेद में लिखा है कि पुरुष को सन्तानोत्पत्ति करनी चाहिए। बिना स्त्री के आधे शरीर से पुत्रोत्पत्ति हो नहीं सकती इसलिए सवर्णा स्त्री के साथ विवाह करना चाहिए।

यह स्त्री अर्थ, धर्म, और काम की बड़ी भारी भूमि—पैदा करने वाली—है। उन तीनों अर्थों की प्राप्ति बिना स्त्री के दूसरे साधन से हो नहीं सकती।

इधर उधर के व्यभिचार आदि दोषों से बच कर अपनी इन्द्रियों को अपने वश में रखता हुआ गृहस्थ पुरुष उस स्त्री का पालन-पोषण करे। विवाह करके पुरुष अग्नि और स्त्री के सहित, घर बना कर बसे।

अपनी मिहनत से कमाये हुए धन को पाकर विधि पूर्वक स्थापित किये श्रौत अग्नियों को कभी न छोड़े। स्मृतियों में बतलाये हुए कर्मों को विवाह-सम्बन्धी गृह्य अग्नि में और श्रौत कर्मों को श्रौत अग्नियों में करना चाहिए।

प्रति दिन विधि और प्रीतिपूर्वक उक्त कर्मों को करते हुए स्त्री—पुरुषों का धर्म, अर्थ और काम रात दिन सब प्रकार एक मन होकर, एक व्रत होकर और एक बुद्धि होकर रहना चाहिए। स्त्रियों के लिए धर्म, अर्थ, काम प्राप्त करने का साधन पति के सिवा कोई नहीं है।

पति से मालूम करके, पति की आज्ञा से स्त्री धर्म का आगे और करे।

स्त्री पति से पहले उठ कर देह की शुद्धि करके, खाट आदि उठाकर और बुहारी आदि से घर की सफाई करे। बुहार कर और लीप कर अग्नि की शाला और अपने आँगन को शुद्ध करे। अग्निहोत्र के बर्तन वगैरह जिन से हवन होता हो उनको गर्म जल से धोकर जहाँ के तहाँ पानी आदि भर कर ठीक ठीक स्थान पर रख दे। फिर रसोई के बर्तनों की सफाई करके चौके की सफाई करे। जो जो बर्त्तन जिस जिस चीज के रखने के योग्य हो उसको उसी उसी बर्त्तन में रक्खे।

दुपहर से पहले के कामों को करके अपने गुरु-पति-को अभिवादन करे।

अपने माता-पिता या पति के माता-पिता—सास-ससुर, तथा भाई, मामा और बान्धव इनके ही दिये हुए कपड़े और जेवर स्त्री सदा पहना करे।

मन, वाणी और कर्म से शुद्ध, पति की आज्ञा में वर-तने वाली, छाया के समान पति की अनुगामिनी—पीछे पीछे चलने वाली, और स्वच्छ हुई सखी की नाईं पति का हित करे। पति के कहे हुए कामों को स्त्री सदा दासी की तरह करे। फिर अन्न की अच्छी अच्छी स्वादिष्ट चीजें बना कर पति को निवेदन करके, देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ जिस अन्न से कर चुकी हो ऐसे अन्न से जिमाने के योग्य अतिथि आदि को और पति को जिमावे और पति की आज्ञा लेकर बचे हुए अन्न को खुद खावे।

भोजन करने के बाद बाकी दिन में आमदनी-खर्च का हिसाब-किताब लिखे।

इस तरह प्रति दिन प्रातःकाल और सायकाल घर की सफाई करके पतिव्रता स्त्री नित्य प्रीतिपूर्वक अच्छे स्वादिष्ट भोजन बना कर बड़ी प्रीति से अपने पति को जिमावे और घर का उत्तम प्रबंध रक्खे।

स्त्री को चाहिए कि कभी नंगी न रहे, बेहोश भी न रहे। निष्कल और जितेन्द्रिय हो कर रहे। ऊँची आवाज से चिल्ला कर कभी न बोले और कठोर भी न बोले। बहुत बेकाम किसी से बात चीत न करे, कम बोले। जो पति को प्यारे मालूम न होते हों ऐसे वचन कभी न बोले। किसी के साथ कभी लड़ाई झगड़ा न करे, बिना मतलब कभी कोई बात न कहे। किसी बीते हुए दुःख का विलाप न करे, बहुत खर्च करने की आदत न बनावे धर्म और अर्थ का विरोध न करे।

असावधानी, उन्माद, क्रोध, ईर्ष्या—डाह, ठगना—छल-फरेब, अधिक मान चाहना, चुगली करना, हिंसा, बैर, अहङ्कार, धूर्तपन, नास्तिकता, साहस (जल्दी में बिना विचारे चाहे सो कर डालना) चोरी और दम्भ दिखावा, इन सब बुरी बातों को साध्वी स्त्री छोड़ दे। इस प्रकार परम देवता रूप अपने पति की सेवा करती हुई वह स्त्री इसलोक में यश और सुख को पाती हुई परलोक में भी अत्यन्त सुख पाती है।

जो स्त्री धूर्त हो, जो धर्म और काम को नष्ट करती हो, जिसके कोई पुत्र न होता हो, जिसको असाध्य रोग हो, जो अत्यन्त दुष्टा हो, जिसको शराब पीने आदि का दुर्व्यसन लगा हो और जो पति का हित न चाहती हो या न करती हो ऐसी स्त्री का अधिवास न करे—ऐसी स्त्री के मौजूद होने पर भी दूसरी स्त्री के साथ विवाह कर लेना चाहिए।

जिसके विद्यमान होते हुए दूसरा विवाह किया है, पति को चाहिए कि उस पहली स्त्री का भी दूसरी स्त्री के समान ही कपड़े जेवर वगैरह से आदर सत्कार किया करे।

स्त्री, पति के परदेश चले जाने पर, मलिनवर्ण, दीन-मुख हो, देह में उबटना, तैल लगाना आदि न करती हुई, पति में मन रक्खे। दूसरे पुरुष का मन से भी ध्यान न करे। आहार कुछ कम करे, देह को दुबला-पतला रक्खे। ऐसे स्त्री सच्ची पतिव्रता कहाती है।

स्त्रियों की सब अवस्थाओं में पुरुष रक्षा किया करते हैं और करनी चाहिए अर्थात् बालकपन में पिता, जवानी की उम्र में पति, और वृद्ध अवस्था में पुत्रादि अपनी पुत्री, पत्नी और माता आदि की क्रम से रक्षा, पालन-पोषण आदि किया करें।

जो सन्तान अपने घर में पैदा हुई हो या गोद लेकर जिनका पालन-पोषण किया गया हो, ऐसे जो पुत्र, पौत्र,

भोजन करने के बाद बाकी दिन में आमदनी-खर्च का हिसाब किताब लिखे।

इस तरह प्रति दिन प्रातःकाल और सायंकाल घर की सफ़ाई करके पतिव्रता स्त्री नित्य प्रीतिपूर्वक अच्छा स्वादिष्ट भोजन बना कर बड़ी प्रीति से अपने पति को जिमावे और घर का उत्तम प्रबंध रक्खे।

स्त्री को चाहिए कि कभी नंगी न रहे, बेहोश भी न रहे। निष्फल और जितेन्द्रिय हो कर रहे। ऊँची आवाज से चिल्ला कर कभी न बोले और कठोर भी न बोले। बहुत बेकाम किसी से बात चीत न करे, कम बोले। जो पति को प्यारे मालूम न होते हों ऐसे वचन कभी न बोले। किसी के साथ कभी लड़ाई झगड़ा न करे, बिना मतलब कभी कोई बात न कहे। किसी बीते हुए दुःख का विलाप न करे, बहुत खर्च करने की आदत न बनावे धर्म और अर्थ का विरोध न करे।

असावधानी, उन्माद, क्रोध, ईर्ष्या—डाह, ठगना—छल-कपट, अधिक मान चाहना, चुगली करना, हिंसा, वैर, अहंकार, धूर्तपन, नास्तिकता, साहस (जो मन बिना विचारे चाहे सो कर डालना) चोरी और दम्भ दिखाना, इन सब बुरी बातों का साध्वी स्त्री छोड़ दे। इस प्रकार परम देवता रूप अपने पति की सेवा करती हुई बाद स्त्री इसलोक में यश और सुख का भागी हुई परलोक में भी अत्यन्त सुख पाती है।

जो स्त्री धूर्त हो, जो धर्म और काम को नष्ट करती हो, जिसके कोई पुत्र न होता हो, जिसको असाध्य रोग हो, जो अत्यन्त दुष्टा हो, जिसको शराब पीने आदि का दुर्व्यसन लगा हो और जो पति का हित न चाहती हो या न करती हो ऐसी स्त्री का अधिवास न करे—ऐसी स्त्री के मौजूद होने पर भी दूसरी स्त्री के साथ विवाह कर लेना चाहिए।

जिसके विद्यमान होते हुए दूसरा विवाह किया है, पति को चाहिए कि उस पहली स्त्री का भी दूसरी स्त्री के समान ही कपड़े ज़ेवर वगैरह से आदर सत्कार किया करे।

स्त्री, पति के परदेश चले जाने पर, मलिनवर्णा, दीन-मुख हो, देह में उबटना, तैल लगाना आदि न करती हुई, पति में मन रक्खे। दूसरे पुरुष का मन से भी ध्यान न करे। आहार कुछ कम करे, देह को दुबला पतला रक्खे। ऐसे स्त्री सच्ची पतिव्रता कहाती है।

स्त्रियों की सब अवस्थाओं में पुरुष रक्षा किया करते हैं और करनी चाहिए अर्थात् बालकपन में पिता, जवानी की उम्र में पति, और वृद्ध अवस्था में पुत्रादि अपनी पुत्री, पत्नी और माता आदि की क्रम से रक्षा, पालन-पोषण आदि किया करें।

जो सन्तान अपने घर में पैदा हुई हो या गोद लेकर जिनका पालन-पोषण किया गया हो, ऐसे जो पुत्र, पौत्र,

श्रीर प्रपौत्र, श्रादि कहाने वाले होते हैं श्रीर ये, मारा देने वाले तथा बड़े बड़े फलों के देनेवाले, श्रग्निहोत्र श्रादि यज्ञों से अपने पितरों को पूजते—सन्तुष्ट करते हों, ऐसे पुत्रों के मरने पर उनके स्थापित किये हुए अग्निहोत्र की अग्नि से विधिपूर्वक दाहकर्म करना चाहिए। श्रौर यदि ऐसे मनुष्यों की स्त्री पहले मर जाय तो उसका उसी अग्निहोत्र की अग्नि से दाहकर्म करना चाहिए। यह स्वर्ग का साधन है।

गृहस्थ सबसे बड़ा है

सब श्राश्रमों में जो पुण्य बतलाये गये हैं श्रौर जो पुण्य मोक्ष—धर्म के हैं वे सब गृहस्थाश्रम में मिल सकते हैं। सब श्राश्रमों में गृहस्थ श्राश्रम सबसे बड़ा है। जो गृहस्थ पुरुष अपने धर्म का पूरा पूरा शास्त्र के अनुसार पालन करता है उसको सब तीर्थों का फल घर में ही मिल जाता है।

गुरु का भक्त, स्त्री पुत्रादि भृत्यों का पालन करनेवाला दया करने वाला, जो किसी की कभी बुराई नहीं करता, जो सदा जप-होम करता है, सच बोलता है, श्रौर जितेन्द्रिय रहता है, अपनी ही स्त्री में जिसको सन्तोष है। दूसरे की स्त्री को न चाहता हो, जिसकी कोई बुराई न करता हो, ऐसे धर्मात्मा गृहस्थ पुरुष को घर में ही तीर्थ का फल मिलता है।

दूसरे की स्त्री तथा दूसरे के धन को जो चाहता है वह सब तीर्थो की सेवा करे तो भी कुछ फल नहीं होता।

नम्रता रखना, जिमाने के समय विद्वानों के पैर धोना, ब्राह्मणों को तृप्त करना, बलि-वैश्वदेव करना और भिक्षा देना इन कामों को जो प्रति दिन करता रहता है उसको पाप नहीं लगता।

दान का माहात्म्य

जो, उत्तम विद्वान् धर्मात्माओं को धन देता है या जो स्वय धन का भोग करता है उसी धन को उसका धन समझना चाहिए और बाकी धन की मानो वह दूसरे के लिए ही रक्षा करता, कमाता, है। जितना दान देता है या भोग कर लेता है वही धन उसका धन है। क्योंकि उसके मर जाने पर बाक़ी धन से दूसरे ही आनन्द भोगते हैं।

बुद्धे देहधारी मनुष्य धन से क्या कर सकते हैं? जिस शरीर को धन से बढ़ाया या हृष्ट पुष्ट किया जाता है वह शरीर अनित्य है, सदा रहनेवाला नहीं है। मित्र और धन सदा नहीं रहते और मौत सदैव पास खड़ी है। इस लिए धर्म का सञ्चय करना चाहिए।

जा धन, धर्म के लिए, काम भोग के लिए और कीर्ति के लिए न हो और जिसको यहीं छोड़ कर परलोक जाना

पड़ता है उस धन को धर्म-कार्य में क्यों न खर्च किया जाय ?

जिस मनुष्य के जीवित रहने से ब्राह्मण, मित्र और कुटुम्बी लोगों की जीविका हो, उपकार होता हो उसी पुरुष का जीना सफल है। अपने लिए कौन नहीं जीता ?

कृमि, कीट, पतङ्ग आदि भी क्या अपने जीवन का निर्वाह नहीं करते जो एक दूसरे को खा लेते हैं। परन्तु परलोक के लिए जो दान-पुण्य करता हुआ जीता है उसी का जीवन सार्थक—सफल—है।

केवल अपना पेट भरनेवाले तो पशु भी बहुत दिन तक जीते रहते हैं। अच्छी तरह रक्षा किये हुए बलवान बहुत जीनेवाले शरीर से मनुष्यों को क्या लाभ है ? एक ग्रास या आधा ही ग्रास माँगनेवाले को क्यों नहीं देता ? इच्छा के अनुसार धन कब किसके हुआ और होगा ? अर्थात् इतना धन कभी किसी के पास न होगा जिससे तृष्णा पूरी हो जाय।

व्यासजी कहते हैं कि हमारी राय में किसी को कुछ भी न देनेवाला ही पुरुष सच्चा त्यागी है क्योंकि वह धन को दूसरों के लिए छोड़ कर मर जाता है; साथ कुछ भी नहीं ले जाता। परन्तु हम दाता (देनेवाले) को कञ्जूस समझते हैं क्योंकि देनेवाला मर कर भी धन को नहीं छोड़ता अर्थात् मर जाने के बाद भी उसके धन देने के पुण्य-फल का उत्तम अक्षय्य भाग मिलता ही है।

प्राणी का नाश होना निश्चय ही है परन्तु अपना काम, दान, पुण्य आदि शुभ कर्म करके जो मरता है वह मानो नहीं मरा और जो बिना धर्म किये मरता है वह गधे के समान है।

बिना बुला कर विद्वान् ब्राह्मण के घर जा कर और बिना ही माँगे, जो दान दिया जाता है उस दान का फल युगयुगान्तर तक रहता है।

जिस गाय का बछड़ा मर गया हो या गाभिन हो तो ऐसी गाय का दूध दुहना, शास्त्र के विरुद्ध माना गया है—ऐसी गाय का दूध नहीं पीना चाहिए। इसी प्रकार आपस में दान देने की जो रीति-व्यवहार है वह लोक रीति है। उस दान को धर्म नहीं समझना चाहिए।

जो मनुष्य पाप को न देख कर—(अर्थात् किसी पाप के नाश के लिए न देता हो), और दान का भोग करनेवाले को न देखे (यह इच्छा न करे कि इस दान का फल मुझे मिले), और यह भी इच्छा न करे कि फिर मैं इसी संसार में आऊँगा। ऐसे समय में ऐसा विचार कर दान का फल अनन्त होता है। किसी कामना से जो दान न किया जाय वही दान सबसे उत्तम माना गया है।

माता-पिता, भाई, श्वसुर, स्त्री, पुत्र और पुत्री इनको जो दान दिया जाता है वह भी अनन्त सुख का—स्वर्ग का—देनेवाला है।

पिता को देना सौ गुना, माता को हजार गुना, बहन को देना लाख गुना होता है और दूसरे को जो दिया जाता है उसका कभी भी नाश नहीं होता किन्तु अक्षय फल मिलता है।

व्यासजी कहते हैं कि हे मुनीश्वरो! सुपात्र ब्राह्मण को रोज़ रोज़ दान देना चाहिए क्योंकि जो कभी कोई तपस्वी सुपात्र सिद्ध योगी महात्मा आ जायेगा तो वह दानवाले को संसार-सागर से पार कर देगा।

कोई सुपात्र तो वेदपाठी और कोई तपस्वी होता है। पर सब सुपात्रों में अच्छा सुपात्र वह माना गया है जिस के पेट में शूद्र का अन्न न गया हो। शूद्र का अन्न खाना बहुत बुरा है।

जिसके घर के पास मूर्ख ब्राह्मण रहता हो और गुणी सुपात्र कहीं दूर रहता हो तो उसी गुणी का ही दान देना चाहिए मूर्ख को नहीं। उस मूर्ख का तिरस्कार करने में कुछ दोष नहीं है।

किसी देवता के मन्दिर-सम्बन्धी धन का नाश करने से, ब्राह्मण का धन किसी प्रकार मार लेने से और विद्वान् ब्राह्मण का तिरस्कार करने से, तिरस्कार करनेवाला पतित हो जाता है।

लुन, उल्लंघन नहीं है क्योंकि जलती हुई आग को छोड़कर राख में हवन नहीं किया जाता। अर्थात् जैसे राख को छोड़ कर जलती हुई आग में हवन करना उचित है वैसे ही मूर्ख ब्राह्मण को छोड़ कर विद्वान् को दान देना चाहिए। हाँ, पास में रहने वाले विद्वान् ब्राह्मण का तिरस्कार दान देते समय करना ठीक नहीं है।

जैसे काठ का हाथी और चाम का बना हुआ हिरन, वैसा ही बिना पढ़ा लिखा मूर्ख ब्राह्मण, ये तीनों नाम मात्र ही के हाथी, हरिन और ब्राह्मण कहाने वाले होते हैं अर्थात् निरर्थक हैं।

जैसा गाँव का स्थान सूना और जैसा जल के बिना कुआ होता है वैसा ही बिना पढ़ा लिखा मूर्ख ब्राह्मण ये तीनों नाम के ही धारण करनेवाले हैं—असिल में ये सब सच्चे गाँव, कुआ और ब्राह्मण नहीं हैं।

जो धन विद्वानों को दिया जाता है और जिससे अग्नि में हवन किया जाता है वही धन कहाता है और बाकी धन धन नहीं।

सम ब्राह्मण को जितना दान दिया जावे वह सम अर्थात् उतना फलदायक होता है और ब्राह्मण-ब्रुव को जो दान दिया जाता है वह उसका दूना फल देता है, आचार्य्य को दिया हुआ दान हजार गुना फल का देने वाला और वेदपारग को दिया दान अनन्त फल देनेवाला होता है।

जो ब्राह्मण अपने ब्राह्मण माता-पिता से पैदा हुआ हो और वेद के मन्त्रों से जिसका जनेऊ या जात-कर्म आदि संस्कार न हुए हों और जो गायत्री भी न जानता हो और ब्राह्मण जाति में पैदा होने से ही जीविका करता हो वह ब्राह्मण सम कहाता है।

जिसके गर्भाधान आदि संस्कार तो वेद मन्त्रों से हुए हों और जो गायत्री भी जानता हो पर वेद न पढ़ा लिखा हो तो उसको ब्राह्मण-ब्रुव कहते हैं।

जो अग्निहोत्र करने वाला और तपस्वी हो, कल्प, वेदांग, और उपनिषद् के सहित वेदों को जो बिना तनखाह लिये धर्मार्थ पढ़ाये उसको आचार्य कहते हैं।

सब लोग पवित्र चीज़ें जिन को विद्वान् पसन्द कर और पचजाने वाली हों वेही चीज़ें उनको मिलनी चाहिए।

वेद का जाननेवाला और अपने धर्म कर्म में लगा हुआ ब्राह्मण जो खाता है, देनेवाले का उसका फल असंख्य और अविनाशी होता है।

व्यासजी कहते हैं कि हाथी, घोड़ा, रथ, पान, पालकी आदि इनको कोई कोई अच्छा बतलाते हैं परन्तु हे मुनियो! हम नहीं चाहते क्योंकि ये हाथी आदि किस कर्म की सम्प्रदायें-फल हैं? वेद रूपी हल से जोते हुए जो सत्पात्र ब्राह्मणों के उत्तम शरीर हैं उनमें जो पूर्वजन्म में बीज बोया गया था उसी खेती के ये हाथी, घोड़ा आदि फल हैं।

सौ में एक शूर-वीर होता है, हज़ार में एक पण्डित होता है और लाख में एक वक्ता—वेदादि शास्त्रों के गूढ़ विषयों को ठीक ठीक वर्णन कर सकने वाला—होता है और लाखों में भी दाता होना दुर्लभ है।

मनुष्य संग्राम भूमि में जीत पा लेने से ही शूर नहीं कहलाता वेदादि शास्त्रों को पढ़ लेने मात्र से पण्डित नहीं कहलाता, वाणी की चतुराई मात्र से—बनावटी व्याख्यान दे देने मात्र से दाता नहीं होता। किन्तु इन्द्रियों को जो अच्छी तरह जीत ले—अपने काबू में रक्खे-वह शूर, शास्त्रों में बतलाये हुए धर्म-कर्म का जो ठीक ठीक करता हो वह पण्डित, वेद के अनुकूल दूसरों की भलाई का जो प्रियवाणी से उपदेश करता हो वह वक्ता, और श्रद्धा तथा आदर के साथ जो दान देता हो वह दाता कहलाता है।

प्यार के कारण, भय के कारण या धन आदि के लोभ से जो एक पंक्ति में भोजन करने के लिए बैठे हुओं में अधिक या कम, किसी को अच्छी चीज़ें किसी को बुरी परोसता है वह ब्रह्महत्या का दोषी होता है। यह सब मुनियों की राय है।

ऊपर में बोया हुआ बीज, फूटे हुए बर्तन में दुहा हुआ दूध, राख में किया हुआ हवन और मूर्ख को दिया हुआ दान ये सब निष्फल हैं।

मृत-सूतक में जो ब्राह्मण शूद्र के घर भोजन करके अपने शरीर को पालता पोषता है वह मर कर किस योनि में जाता है यह हम नहीं जानते।

शूद्र का अन्न पेट में रहते हुए जो ब्राह्मण मर जाता है वह या तो सुअर की योनि में जन्म लेता है या उसी शूद्र के कुल में जन्म पाता है।

मनुजी ने भी लिखा है कि—शूद्र का अन्न खाने वाला ब्राह्मण बारह जन्म तक गीध सात जन्म तक सुअर और सात जन्म तक कुत्ता बनता है।

ब्राह्मण का अन्न खाने से अमृत देवयोनि, क्षत्रिय का अन्न खाने से दरिद्रता, वैश्य का अन्न खाने से शूद्र और शूद्र का अन्न खाने से नरक होता है।

जो ब्राह्मण मनुष्य एक महीने तक लगातार शूद्र का अन्न खाता रहता है वह इसी जन्म में शूद्र हो जाता है और मर कर कुत्ते की योनि में जन्म लेता है।

जो मनुष्य बर्तन का विचार नहीं रखते अर्थात् किस के बर्तन में खाना-पीना चाहिए किसके में नहीं यह जो विचार नहीं करता किन्तु सबके बर्तनों में खा लेता है वह, और बहुत से वर्ण-संकरों के साथ जो मेल मिलाप रखता हो और जो चाहे जिस स्त्री को घर में रख लेता हो—डाल लेता हो, ऐसे मनुष्य मर कर नरक भोगते हैं।

जो पंक्ति में कम या अधिक परोसे, जो पाक करने वाला पंच महायज्ञ न करता हो—जो अपना पेट भरने के लिए ही अन्न पकाता हो, जो ब्राह्मणों की निन्दा करता हो, जो आज्ञा का करनेवाला अर्थात् दूसरों की सेवा करता हो, जो वेद को बेचनेवाला हो, जो रुपया लेकर वेद को पढ़ाता हो या जप करता हो तो ये पाँच ब्रह्महत्या के दोषी होते हैं।

यह सब व्यासजी का मत है। इसके अनुसार जो व्यवहार और आचरण करेगा वह अवश्य सुख पावेगा।
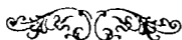
चौदस, पौर्णमासी, अष्टमी, ग्रहण पड़ने के समय, उल्कापात होने पर, बिजली के तड़पते समय, भूकम्प के समय जन्म-मरण के सूतक में, गाँव के जलने के समय, वर्षा में जब इन्द्र धनुष दिखलाई दे, तब कुत्तों के रोने के समय, जब बहुत से आदमी शोर करते हों, बाजा बजने के समय और युद्ध के समय वेद न पढ़ना चाहिए।

सवारी पर चढ़ कर, नाव में बैठ कर देव मन्दिर में खाली पर बैठ कर और श्मशान भूमि में बैठ कर वेद न पढ़ना चाहिए।

ब्राह्मण ब्रह्मचारी विशेष कर गृहस्थ ब्राह्मण के घर पर विधिपूर्वक भिक्षा माँगे। और गुरु की आज्ञा लेकर पूर्व की ओर मुँह करके सफ़ाई से भोजन करे।

अहङ्कार छोड़ कर गुरु का प्रिय काम और हितकारी काम करना चाहिए। शाम को सन्ध्या और शयन करके गुरु को ब्रह्मचारी अभिवादन करे और जो कुछ व आज्ञा दें उसको पूरा करे और गुरु के पहले सदा उठे और पीछे सोये।

ब्रह्मचारी मांस खाना, मदिरा पीना, आँखों में सुरमा डालना, श्राद्ध का भोजन माँगना, गाना, बजाना, हिंसा दूसरे की बुराई करना और विशेष कर स्त्रियों की बात चीत करना बिल्कुल छोड़ दे।

मूँज आदि की मेखला—करधनी, मृगछाला और दण्ड

इनको सदा अपने पास रक्खे—धारण करे—और ज़मीन पर सोवे।

वेद पढ़ने के समय विचारशील ब्रह्मचारी इस प्रकार व्रत नियम करता हुआ, वेद पढ़ चुकने पर गुरु को दक्षिणा दे कर, गुरु की आज्ञा से समावर्तन करके गृहस्थ आश्रम को ग्रहण करे।

विवाह की रीति

जो अपने प्रवर या गोत्र की न हो ऐसी सुशील कन्या से विधिपूर्वक विवाह करे।

ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पिशाच ये आठ प्रकार के विवाह कहाते हैं। इनमें आख़िरी विवाह बुरा माना गया है। इनमें से जो चार पहले हैं वे धर्मयुक्त अच्छे विवाह हैं। गान्धर्व और राक्षस ये दोनों क्षत्रिय के लिए अच्छे हैं।

जो बड़े यत्न से प्रार्थना करने पर वेद-विधि से विवाह किया जाय उसको ब्राह्म-विवाह कहते हैं। यज्ञ में बैठे हुए ऋत्विक् वर को जो कन्या वेद-विधि से दी जाय वह दैव, और दो गौ या उनकी क़ीमत ले कर जो विवाह वेद-विधि से किया जाय उसको आर्षविवाह कहते हैं। कन्यावाले से कन्या माँगने के लिए जो वर प्रार्थना करे और वेदोक्त विधि से किया जावे तो उस विवाह का नाम प्राजापत्य है। धन लेकर जो विवाह किया जावे उसे असुर विवाह; कन्या

और वर दोनों की इच्छा से जो विवाह किया जावे उसको गान्धर्व विवाह कहते हैं। युद्ध करके जो कन्या छीनी जावे उसको राक्षस-विवाह और छल से चुरा कर जो कन्या ले ली जाय उस को पैशाच-विवाह कहते हैं।

जो घर का काम-काज सँभालने में होशियार हो, पतिव्रता हो और जिसके प्राण पति में ही लगे रहते हों और जो पुत्र आदि सन्तानवाली हो वही अच्छी स्त्री है।

पञ्च-महायज्ञों का वर्णन

गृहस्थ पुरुष को चूल्हा, चक्की, बुहारी, ओखली और जल के घड़े से पाप हत्या लगती है। इस हत्या रूप पाप की निवृत्ति के लिए गृहस्थ पुरुष को पाँचों महायज्ञ प्रति दिन जरूर करने चाहिए। क्योंकि पाँचों यज्ञों के करने से गृहस्थ के हत्यासंबन्धी पाप नष्ट हो जाते हैं। ये पाँच यज्ञ ये हैं—देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ और मनुष्य यज्ञ।

वानप्रस्थी, ब्रह्मचारी और संन्यासी ये तीनों द्विज गृहस्थ के भिक्षारूप प्रसाद से जीते हैं।

गृहस्थ ही यज्ञ करता, गृहस्थ ही तप करता और गृहस्थ ही दान देता है इसलिए गृहस्थ आश्रम ही सबसे उत्तम है।

जिस प्रकार स्त्रियों की रक्षा करनेवाला पति, जिस प्रकार वर्णों की रक्षा करनेवाला ब्राह्मण है इसी प्रकार गृहस्थ का प्रभु अतिथि है।

चारों आश्रम और स्त्री के परम धर्म

व्रत, उपवास और अनेक प्रकार के धर्म सेवन से भी स्त्री स्वर्ग को प्राप्त नहीं होती किन्तु श्रद्धा-भक्ति के साथ तन, मन, धन से पति की सेवा—पूजा से ही स्त्री को निश्चय स्वर्ग मिलता है।

व्रत, उपवास और अपने किये अनेक प्रकार के यज्ञों से राजा को स्वर्ग नहीं मिलता किन्तु धर्मानुसार ठीक ठीक प्रजा की रक्षा करने से राजा को अवश्य स्वर्ग प्राप्त होता है।

स्नान करने, मौन रहने और अग्नि की सेवा—हवन करने—से ही ब्रह्मचारी को स्वर्ग नहीं मिल सकता किन्तु गुरु की पूजा, गुरु में ठीक ठीक श्रद्धा भक्ति रखने से ब्रह्मचारी को अवश्य स्वर्ग मिलता है।

अग्नि की सेवा—पंचाग्निताप से, क्षमा से और अनेक प्रकार बार बार नहाने से ही वानप्रस्थ को स्वर्ग नहीं मिल सकता किन्तु जब भोजन का त्याग—उपवास करके इन्द्रियों की चञ्चलता जाती रहती है और मन में परमार्थ का विचार होता है तब स्वर्ग-प्राप्ति होती है।

तीनों दण्डों से, मौन रहने से और सुनसान जगह में रहने से संन्यासी सिद्धि को नहीं पाता किन्तु योगाभ्यास से ही सबसे अच्छी गति पाता है।

दक्षिणावाले बड़े बड़े यज्ञों से तथा हवन से गृहस्थ पुरुष वैसा स्वर्ग को प्राप्त नहीं होता जैसा अतिथि की

सेवा से स्वर्ग मिलता है। इसलिए गृहस्थ पुरुष को बड़ी कोशिश से भोजन आदि से अतिथि का सत्कार करना चाहिए।

इन पहले कहे हुए गुणों से जो युक्त हो तथा धर्मानुकूल उपाय से जिसने धन इकट्ठा किया हो उसी का यज्ञ विद्वान् ब्राह्मण करावे और ऐसे ही धर्मात्मा मनुष्य से प्रतिग्रह—दान—ले।

जब पुत्र पौत्रादि हो जावें और वृद्धावस्था भी आ गई हो तब गृहस्थ पुरुष को चाहिए कि वानप्रस्थ आश्रम स्वीकार करे। वानप्रस्थ के बाद संन्यास आश्रम में सब धनादि पदार्थों को छोड़ कर चला जाना चाहिए। भिक्षा माँग कर खावे और जैसी भिक्षा मिले उसी से सन्तुष्ट रहे। संन्यासी का पात्र तूम्बी होना चाहिए, किसी धातु का नहीं। संन्यासी को चाहिए कि आँख से देख कर रास्ते में पैर रक्खे, कपड़े से छान कर पानी पीवे, सच बोले और शुद्ध मन से इधर उधर विचरा करे। सब प्राणियों पर एक सी दृष्टि रक्खे, सबको मित्र समझे। मट्टी का ढेला, पत्थर और सोना इनको एक सा समझे। ध्यान और योगाभ्यास में लगा रहे, सदा इस तरह के काम करने से संन्यासी परम गति पाता है।

जीते जी ही जो जन्म और मरण के बन्धनों से छूटा हुआ है, मन की पीड़ा और शरीर के रोग भी जिसको नहीं सताते, विद्वान् लोग उसी को ब्राह्मण कहते हैं।

शरीर का अशुद्ध होना, प्रिय के स्थान में अप्रिय और अप्रिय के स्थान में प्रिय होना, मलिन स्थान में गर्भवास होना इन सबसे संन्यास के बिना नहीं छूट सकता।

"यह जगत् बड़ा भयानक है, यह संसार असार है, इसमें कर्म का फल ज़रूर भोगना पड़ता है" इस प्रकार विचारता हुआ जो पुरुष अपना समय व्यतीत करता है वह ज़रूर मुक्ति पाता है।

प्राणायामों के द्वारा इन्द्रियों के दोषों को और धारणाओं से शरीर के पापों को भस्म कर देना चाहिए। प्रत्याहार से संगों को और ध्यान के द्वारा ईश्वर के विरोधी नास्तिकत्व को नष्ट करना चाहिए।

प्राणों को रोक कर ओंकार सहित ओं भूः। ओं० भुवः। ओं० स्वः। ओं० महः। ओं० जनः। ओं० तपः। ओं० सत्यम्। इन सात व्याहृति मन्त्रों को तीन बार पढ़ने को प्राणायाम कहते हैं।

संयम के जाननेवालों ने मन के रोकने को धारणा बतलाया है। इन्द्रियों को विषयों से मन हटाने को प्रत्याहार कहा है। हृदय में ध्यान के योग से ब्रह्म के साक्षात् करने को ध्यान कहते हैं।

अध्यात्म-विचार

सब देवता, प्राण, तारा-गण और सूर्य ये सब अध्यात्मरूप से अपने हृदय में भी ठहरे हुए हैं। अपने शरीर को

जिस मनुष्य का विज्ञान ही सारथि है और मन—लगाम की रस्सी से जिसका मन बँधा हुआ है वही संसार के रास्ते से परे परमात्मा के परम पद को प्राप्त होता है।

बाल के आगे के हिस्से के एक हज़ार टुकड़े किये जायँ उनमें से एक टुकड़े का जो सौवाँ हिस्सा हो उससे भी सूक्ष्म (छोटा) जीव बतलाया गया है।

इन्द्रियों से परे—सूक्ष्म कारण रूप अर्थ—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गन्ध ये विषय हैं और इन अर्थों से परे सूक्ष्म कारण मन मन से परे बुद्धि और बुद्धि से परे सूक्ष्म कारण महत्तत्त्व या जीव पद-वाच्य आत्मा है। मह त्तत्व से परे सूक्ष्म कारण अव्यक्त नाम की प्रधान व प्रकृति है। अव्यक्त से परे सूक्ष्म पुरुष है। और पुरुष—ब्रह्म से परे सूक्ष्म कारण और कुछ भी नहीं है। किन्तु वही स्थिरता की आखिरी सीमा और वही परम गति है।

यह परमात्मा इस सब संसार के चराचर—चलने वाले और न चलनेवाले—प्राणियों में सदैव एक सा कपड़ों में कपास या सूत के समान ठहरा हुआ है। सूक्ष्म बुद्धि रखनेवाले मनुष्य नवीन सूक्ष्म बुद्धि से परब्रह्म परमात्मा को देखते हैं।

गायत्री मन्त्र का माहात्म्य

वेदों में जितने मन्त्र हैं उन सबमें गायत्री मन्त्र श्रेष्ठ है। गायत्री के बराबर दूसरे मन्त्र का जप नहीं है। और

व्याहृतियों के बराबर होम के लिए दूसरे मन्त्र नहीं हैं। ओंकार का नाम प्रणव है। व्याहृति, प्रणव के सहित जो मनुष्य सदैव गायत्री का जप करता है उसको कहीं भी डर नहीं होता। गायत्री से किया हुआ हवन सब काम नाओं का पूरा करनेवाला होता है। जो मनुष्य शान्ति चाहे वह शुद्ध होकर गायत्री का जप और गायत्री से हवन किया करे। गायत्री का जप करनेवाला चाहे हुये लोक को और फल को प्राप्त करता है। गायत्री वेदों की माता और पापों की नाश करनेवाली है। इस लोक तथा परलोक में गायत्री से अधिक पवित्र करनेवाला कोइ नहीं है। नरकरूपी समुद्र में गिरनेवाले मनुष्य को हाथ पकड़ कर रक्षा करनेवाली गायत्री ही है। इसलिए नियम के साथ मनुष्य शुद्धतापूर्वक नित्य गायत्री का जप करे। गायत्री के जप में जो ब्राह्मण तत्पर रहता हो उसी को, हव्य (जो अन्न देवताओं के लिए बनाया जाता है) और कव्य (जो पितरों के लिए बनाया जाता है) से सत्कार करे। क्योंकि इस प्रकार के मनुष्य में पाप इस तरह नहीं रहते जैसे कमल के पत्ते पर जल की बूँद नहीं ठहरती।

जप करने से ही ब्राह्मण सिद्धि को प्राप्त हो जाता है इसमें कोई सन्देह नहीं है। जप करनेवाला ब्राह्मण और दूसरे पुण्य के काम कर सके वा न कर सके तो भी उस को मैत्र कहते हैं।

जप करने के समय ऊँचे स्वर से न बोले और धीरे

धीर बोल कर जप करने की अपेक्षा मन ही मन में जप करना बहुत अच्छा है।

गायत्री के जप में लगे हुए मनुष्य का स्वर्ग प्राप्त होता है और गायत्री के जप में लगा हुआ मनुष्य मोक्ष का उपाय भी प्राप्त कर लेता है। इसलिए सब तरह के प्रयत्न से नहाने के बाद मन को रोक कर भक्ति से सब पापों के नाश करनेवाली गायत्री का जप करना चाहिए।

इष्टापूर्त्त धर्म्म की व्याख्या

सज्जन धर्म्मात्मा मनुष्य इष्ट (श्रौत अग्निहोत्र आदि) और पूर्त्त (कुआँ आदि बनवाना) धर्म्म के काम बड़े प्रयत्न से करे। क्योंकि इष्ट कर्मों से स्वर्ग और पूर्त्त कर्मों से मोक्ष प्राप्त होता है।

ज़मीन और गाय का दान करने से मनुष्य को जिन लोकों के भोग मिलते हैं उन्हीं लोकों को परोपकार के लिए वृक्ष लगानेवाला मनुष्य प्राप्त होता है।

बावली, कुआ, तालाब और देव मन्दिर इनमें से जो टूट फूट गये हों उनकी मरम्मत करानेवाला भी पूर्त्त कर्मों के फल को भोगता है।

अग्निहोत्र, तप, सत्य, वेदों की रक्षा पाहुने का सत्कार और वैश्वदेव इनको इष्ट कहते हैं।

बालकपन दोष के योग्य नहीं

आठ वर्ष की अवस्था तक बालक, पैदा हुए बालक के समान होता है। ऐसा बालक यदि कभी झूठ बोल दे, या कहने के अयोग्य कोई बात कह दे तो उसको यज्ञोपवीत होने से पहले दोषी न समझना चाहिए। जनेऊ हो जाने के बाद जो बुरे काम करता है उसको दोष अवश्य लगता है। सोलह वर्ष की उम्र तक यह बालक संसार के व्यवहारों के लायक़ भी नहीं होता।

नित्यकर्म्म और स्नान

प्रातःकाल सूर्य्य उदय होने से ले कर शाम तक मनुष्य को अपने काम में लगा रहना चाहिए। उदय होने से चार घड़ी पहले जाग कर शास्त्र

नौ दर्वाज़े हैं, इसलिए मनुष्य-शरीर को अत्यन्त मलिन बतलाया गया है। उन नौ दरवाजों से रात दिन मलिनता निकलती रहती है। इस मलिनता को शुद्ध करने के लिए सबेरे का स्नान करना बतलाया गया है।

सोने के समय मनुष्य की इन्द्रियाँ मलिनता से गीली हो जाती हैं और राल वगैरह टपकने लगती है, सब अंग सुस्त पड़ जाते हैं। सोकर उठने पर मनुष्य के शरीर में अनेक प्रकार के पसीना आदि मल लगे हुए होते हैं। इस लिए मनुष्य को चाहिए कि बिना स्नान किये जप, होमादि शुभ कर्म न करे किन्तु स्नान अवश्य करे और इसके बाद जप-होम आदि करना चाहिए।

सबेरे स्नान करने वाला मनुष्य शरीर की पवित्रता हो जाने से सब जप आदि शुभ कर्म करने के योग्य बनता है। और स्नान करने वाले मनुष्य में ये दस उत्तम गुण हो जाते हैं—१-रूप, २-शुचि, ३-बल, ४-तेज, ५-नीरोगता, ६-प्रयत्ता, ७-लालच छूटना, ८-मन की शुद्धि से बुरे बुरे स्वप्नों का न होना, ९-तप और १०-तीक्ष्ण बुद्धि का होना।

सबेरे का स्नान मन को प्रसन्न करने वाला, रूप तथा सौभाग्य को बढ़ाने वाला, दुःख तथा शोक का नाश करने वाला, मान और ज्ञान का देने वाला होता है।

पोष्य-वर्ग

माता, पिता, गुरु, स्त्री, सन्तान, दीन, अनाथ, दास, अभ्यागत, अतिथि और अग्नि ये सब मनुष्य का पोष्य-वर्ग

कहाता है। इसका पालन-पोषण और सेवा करना मनुष्य को संसार में ही सुख देने वाला नहीं किन्तु परलोक में भी सुखदायक है। इससे इस पोष्य-वर्ग का प्रत्येक गृहस्थ को अवश्य पालन-पोषण करना चाहिए।

अपने कुल में वा सम्बन्धियों में जो धनहीन, दरिद्र, क्षीण, असमर्थ, अनाथ और जो शरण में आये हुए हों, ये सब धनी पुरुष के लिए पोष्य-वर्ग में गिनाये हैं अर्थात् पहला पोष्य-वर्ग तो प्रत्येक गृहस्थ के लिए साधारण रूप से है और धनी पुरुष के लिए ये दोनों ही पोष्य-वर्ग हैं—धनी पुरुष को ऊपर बतलाये हुए पोष्य-वर्ग का और इस पोष्य-वर्ग का बड़े यत्न से पालन-पोषण करना चाहिए।

पोष्य-वर्ग का पालन करना स्वर्ग का सबसे बढ़ कर उत्तम साधन है। और पोष्य-वर्ग को दुःख पहुँचाने से नरक होता है। इसलिए पोष्य-वर्ग का अवश्य पालन पोषण करना चाहिए।

जिस एक पुरुष के सहारे से बहुतों का जीवन होता हो वह एक तो मानो जीता हुआ है और बाकी अपना ही पेट भरने वाले पुरुष जीते हुए भी मुर्दे के समान हैं।

कोई कोई मनुष्य तो दूसरों को लाभ पहुँचाने के लिए रोज़गार करते हैं, और कोई कोई अपने कुटुम्ब का पालन करने के लिए ही रुपया कमाते हैं। कोई कोई ऐसे भी हैं कि अपना भी पेट भरने में दुःखी रहते हैं—अपना भी गुज़ारा अच्छी तरह नहीं कर सकते।

यदि मनुष्य अपनी भलाई—कल्याण—चाहे तो दीन, अनाथ और सज्जन विद्वानों को जरूर कुछ न कुछ अवश्य दान दिया करे। क्योंकि जो दान नहीं देते वे मानो दूसरे के भाग्य से जीने वाले दूसरे की अधीनता के लिए ही पैदा हुए हैं।

जो सज्जन, विद्वान् और धर्मात्माओं को दान देता है और जो प्रति दिन हवन करता है उस पुरुष का उतना ही धन समझना चाहिए, बाकी धन तो दूसरों का है।

गृहस्थ-आश्रम की उत्तमता

देवता, मनुष्य और पशु-पक्षी आदि तिर्यग्योनि, ये सब गृहस्थ पुरुष से ही जीते हैं, इससे गृहस्थ आश्रम सब से अच्छा है। गृहस्थ से ही पैदा होकर ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी होते हैं, इसलिए गृहस्थ-आश्रम सब आश्रमों का मूल कारण है। गृहस्थ के दुःखी रहने से बाक़ी तीनों आश्रम दुःखी हो जाते हैं।

जड़ की रक्षा करने से शाखा और शाखाओं से डालियाँ और डालियों से पत्ते हो जाते हैं और जड़ का नाश हो जाने से शाखा आदि सब नष्ट हो जाते हैं। इसलिए बड़े यत्न से गृहस्थ आश्रम की रक्षा, आदर और मान प्रतिष्ठा राजा और तीनों आश्रमों को सदा करनी चाहिए। गृहस्थ पुरुष भी अपने क्रिया-कर्म में सदा लगा रहे तभी सुख होता है।

घर में रहने से ही मनुष्य गृहस्थ नहीं कहलाता, अपने धर्म-कार्य्य से रहित गृहस्थ, पुत्र और स्त्री से गृहस्थ नहीं होता। किन्तु स्नान, हवन और दान किये बिना जो गृहस्थ भोजन करता है वह मनुष्य और देवता आदि का ऋणी—कर्जदार हो कर अधोगति पाता है। उसे नरक भोगना पड़ता है।

कोई मनुष्य तो अन्न खाता है और किसी मनुष्य को अन्न ही खा जाता है। यदि अन्न किसी को नहीं खाता तो सिर्फ़ उसको नहीं खाता जो वैश्वदेव करके खाता है।

जिसका स्वभाव दूसरों को हिस्सा देने का है, जो क्षमायुक्त है, दयालु है और देवता तथा अतिथियों का भक्त है वही गृहस्थ धार्मिक है।

दया, लज्जा, क्षमा, श्रद्धा, बुद्धिमत्ता, त्याग, कृतज्ञता (दूसरे के किये उपकार को मानना) ये गुण जिस पुरुष में होते हैं वही सच्चा गृहस्थ होता है।

अमृत आदि रूप नौ कर्मों का विचार

गृहस्थ के लिए नौ सुधा (अमृत), नौ मध्यम, नौ कर्तव्य कर्म और नौ विकर्म—बुरे कर्म हैं। नौ छिपे काम, नौ कर्म जाहिर करने योग्य, नौ सफल और नौ निष्फल कर्म हैं, और नौ चीजें कभी देने योग्य नहीं हैं। ये भी नौ संख्या वाले नौ काम अर्थात् ८१ इक्यासी काम बतलाये हैं। ये ही गृहस्थ पुरुष को उन्नति के शिखर पर पहुँचाने

वाले हैं। उनमें नौ सुधा वस्तु ये हैं—यदि कोई प्रतिष्ठित विद्वान्, सज्जन अपने घर आवे तो मन, नेत्र, मुख, वाणी इन चारों को सौम्य, कोमल और श्रद्धायुक्त रक्खे और सज्जन को आता देख कर उठ कर लावे—पेशवाई करे—आने का कारण पूछे, प्रेम से बोले, सेवा करे और उसके पीछे पीछे चले, ये नौ काम प्रति दिन अभ्यागत के लिए करे। ये नौ मध्यम दान हैं—भूमि, जल, कुश का आसन, पैर धोना, तैल मलना, बैठने के लिए कुछ आसन आदि देना, शय्या-खाट, आये हुए अतिथि को यथा शक्ति कुछ देना चाहिए क्योंकि बिना भोजन किये हुए गृहस्थ के घर में अतिथि नहीं रह सकता, माँगने वाले मिट्टी व जल जो माँगे सो देना, ये नौ दान बहुत छोटे हैं, अच्छे घरों में ये सदा हुआ ही करते हैं। सन्ध्या, स्नान, जप, होम, वेद-पाठ, देवताओं का पूजन, वैश्वदेव, क्षमा, यथाशक्ति अन्न निकाल कर अतिथि का सत्कार, ये नौ शुभ कर्म हैं। दूसरी तरह से—पितर, देवता, मनुष्य, दीन, अनाथ, तपस्वी, गुरु, माता-पिता इन सबको यथा योग्य भोजन से सत्कार करे। ये नौ कर्म जितेन्द्रिय विद्वानों को जरूर करने चाहिएँ। इन नौ कर्मों को करके मनुष्य सब धर्म कर्म करने वाला माना जाता है।

झूठ बोलना, परस्त्रीगमन करना, अभक्ष्य का भक्षण करना, अगम्या स्त्री के साथ गमन करना, न पीने के योग्य शराब आदि का पीना, चोरी करना, हिंसा करना, वेद-रहित बुरे कर्मों का करना, धर्म के विरुद्ध किसी के साथ

मित्रता करना, ये नौ काम निन्दा के योग्य तथा बुरे हैं, इनको सदा छोड़े रहे।

चुग़ली करना, झूठ बोलना, छल-कपट, काम, क्रोध, दूसरे का बुरा चाहना, द्वेष, दम्भ—दिखावा और दूसरे के साथ द्रोह करना, ये नौ छिप कर होने वाले निन्दित काम हैं। इनको छोड़ देना चाहिए।

गाना, बजाना, खेती करना, दास-कर्म, वणिज-व्यापार, नमक बनाना, बेचना, जुआ खेलना, हथियार बनाना और अपनी प्रशंसा करना, यह भी नौ कर्मों का तीसरा उदाहरण है।

अवस्था, धन, घर का छिद्र (कोई बुरी बात), विष उतारने का मन्त्र, मैथुन, खास दवाई, तप, दान, और अपमान—कहीं बेइज़्ज़ती हो गई हो, ये नौ बातें छिपाने योग्य होती हैं।

अयोग्य, क़र्ज़ का निपटारा, दान देना, वेद पढ़ना, किसी चीज़ का बेचना, कन्या का दान, और वृषोत्सर्ग, इन बातों को एकान्त में न करे।

माता पिता, गुरु, मित्र, नम्र, उपकारी, दीन, अनाथ, सज्जन, धर्मात्मा, विद्वान्, इन नौ को दान देना सफल है। और धूर्त, क़ैदी, मल्ल, कुवैद्य, कपटी, शठ, चाटु (मिठ बोला ठग), चारण, चोर, इन नौ को दान देना निष्फल है।

मामूली चीज़ें, भिक्षा, किसी की धरोहर, मानस दुःख, स्त्री, मित्र का धन, भय से डर कर शरण में आया मनुष्य,

दूसरे की रक्खी हुई चीजें और वंश के होते हुए अपना सब धन, ये नौ चीजें बड़ी आपत्ति आजाने पर भी कभी किसी दुश्मन वगैरहः को न देनी चाहिए। जो मनुष्य इन चीजों को ऐसे बुरे वक्त पर डर कर दूसरे को दे देता है वह मूर्ख समझा जाता है और प्रायश्चित्त का भागी बनता है।

इन पहले कहे हुए नौ नवक ८१ इक्यासी को जानने वाला—अपने बर्ताव में लाने वाला पुरुष मनुष्यों में अधिपति—प्रधान, माननीय माना जाता है। इस लोक में ऐसे पुरुष को लक्ष्मी प्राप्त होती है और परलोक में भी सुख मिलता है।

दान-धर्म का विचार

सुख की इच्छा करने वाला पुरुष अपने समान दूसरे प्राणियों को देखे, क्योंकि सुख और दुःख जैसे अपने को होते हैं वैसे ही दूसरे प्राणियों को भी होते हैं। सुख या दुःख जो दूसरे के लिए किया जाता है, किये हुए उस उसका फल अपने आत्मा में होता है।

बिना दुःख उठाये धन नहीं मिलता और धन के बिना धर्मसम्बन्धी काम भी ठीक ठीक नहीं होते। कर्महीन मनुष्य धर्म नहीं कर सकता और धर्महीन को कभी सुख नहीं मिल सकता।

संसार में सब मनुष्य सुख की ही इच्छा करते हैं। वह सुख धर्म करने से ही मिल सकता है। इसलिए प्रत्येक प्राणी को बड़ी होशियारी से धर्म करना चाहिए।

न्यायानुसार प्राप्त हुए धन से परलोक के सुधरने के काम यज्ञ वगैरह करने चाहियें। अच्छे समय में गुणी, विद्वान् सुपात्र को विधिपूर्वक दान देना चाहिए। दिये हुए दान का फल क्रम से उतना ही दूना, सहस्रगुना, और अनन्त होता है, जिस प्रकार कि दान का फल कुपात्र, सुपात्र के भेद से न्यूनाधिक होता है। ब्राह्मणादि विद्वान सुपात्र को दान देने का दूना फल और आचार्य को दान देने से सहस्रगुना फल और जिस ने वेदों के अभिप्राय को अच्छे प्रकार जान लिया हो ऐसे वेद-पारग विद्वान को दान देने से अनन्त फल होता है।

विधि-रहित तथा कुपात्र को दान देने से, देने वाले का दान सिर्फ़ फिज़ूल ही नहीं जाता किन्तु उसका बाक़ी धन भी बरबाद हो जाता है।

जो मनुष्य अपने दुःख दूर करने के लिए या सिर्फ़ अपने दुःखी परिवार का पालन-पोषण करने के लिए धन माँगता हो ऐसे पुरुष को खोज कर दान देना चाहिए। यह दान उत्तम माना गया है।

जिस के माता पिता मर गये हों ऐसे अनाथ बच्चे के उपनयन आदि संस्कार करके जो मनुष्य अपने पास रखता है और उसको योग्य बना कर गृहस्थ बना देता है उस पुरुष के पुण्य की कुछ गिनती नहीं है—अनन्त पुण्य माना जाता है। अग्निहोत्र और अग्निष्टोम यज्ञों के करने से जैसा

कल्याण नहीं प्राप्त होता जैसा कि अनाथ बच्चे की नींव स्थापित कर देने से होता है।

संसार की जो जो चीजें अत्यन्त इष्ट और जो जो चीजें अपने को प्यारी हों वे वे चीजें दूसरों को भी प्यारी होती ही हैं इसलिए ऐसी ही चीजें सुपात्र, गुणी, विद्वान् को देनी चाहिएँ। ऐसा दान करने से अक्षय सुख मिलता है।

स्त्री कैसी होनी चाहिए?

यदि आज्ञा में चलने वाली हो तो घर की मूल स्त्री ही है। और यदि वह वशवर्तिनी हो तो गृहस्थ आश्रम से बढ़कर दूसरा आश्रम नहीं है। ऐसी पतिव्रता स्त्री के साथ ही धर्म, अर्थ और काम के त्रिवर्ग फल को मनुष्य भोगता है।

जिसकी स्त्री सब तरह से अपने अनुकूल हो तो उसको अपने घर में ही स्वर्ग है। और जिसकी स्त्री प्रतिकूल—पति से विरुद्ध—है उसको घर ही नरक के समान है।

स्त्री और पुरुष में परस्पर पूरी प्रीति का होना स्वर्ग में भी दुर्लभ है। एक तो प्रेम चाहने वाला हो और दूसरा विरक्त (प्रेमी न हो) हो तो इससे अधिक और क्या कष्ट हो सकता है।

घर में रहना सुख के लिए होता है, और उस सुख का मूल कारण धर्मपत्नी ही है। जो स्त्री नम्र, कोमल हो

जिस की बात आन लेने वाली तथा सर्वथा पति के अधीन रहने वाली हो तो असल में वही पत्नी है।

जो स्त्री दुःखी रहती हो, सदा खेद मानने वाली हो, आपस में एक दूसरे को पीड़ित करे या छिद्र देखे ऐसा प्रतिकूल स्त्री वाले पुरुष को तथा विशेष कर दो स्त्री वाले पुरुष को घर में सदा दुःख ही दुःख होता है।

जिस प्रकार जलौका—जोंक—जिस प्राणी के चिपट जाती है उसका सारा खून चूस लेती है, इसी तरह बुरी स्त्री भूषण, वस्त्र और भोजनादि से पालन-पोषण करते हुए भी पति को सताया करती है। जोंक तो सिर्फ खून को ही चूसा करती है पर प्रतिकूल स्त्री पुरुष के, धन, बल, मांस, बल और सुख सबको नष्ट कर देती है।

बुरी स्त्री छोटी उम्र में तो अपने पति से कुछ डरती रहती है, जवानी की उम्र में अपने पति का सामना करने लगती है, और बुढ़ापे में ऐसी स्त्री अपने पति का तिनके के समान समझने लगती है। अपनी इच्छा के अनुसार काम करने में स्वतन्त्र हुई स्त्री को यदि प्रेम के कारण पति ने न रोका तो पीछे वह स्त्री रोकने पर सामना करने लगती है जिस प्रकार कि उपेक्षा—लापरवाही—करने से रोग बढ़ कर प्रबल हो जाता है और रोगी को दबा लेता है।

जो स्त्री अपने अनुकूल हो, जिस की वाणी कोमल तथा प्रिय हो, जो चतुर—बुद्धिमती—हो, साधु सरल स्वभाव की हो और पतिव्रता हो तो ऐसी स्त्री लक्ष्मी के समान है।

जो स्त्री मन से सदा प्रसन्न रहे, पति को बैठाने तथा प्रतिष्ठा करने में चतुर हो और जो पति में प्रीति रखने वाली हो, तो ऐसी ही स्त्री सच्ची स्त्री है, इसके सिवा दुःखदायिनी होती है।

शिष्य, स्त्री, बालक, भाई, मित्र, सेवक और अपने आश्रित शरणागत, ये सब जिस पुरुष के नम्र, कोमल एवं शिक्षित होते हैं उसकी संसार में बड़ी बड़ाई होती है।

पहली एक स्त्री धर्मपत्नी कहलाती है और दूसरी स्त्री कामासक्ति को बढ़ाने वाली मानी गई है। दूसरी स्त्री का फल इस लोक में प्रत्यक्ष ही दिखलाई देता है। सज्जन धर्मात्मा मनुष्य को सदा एक ही स्त्री रखनी चाहिए, दूसरी नहीं।

यदि शास्त्रोक्त विधि से विवाहिता स्त्री में कोई बड़ा दोष हो तो भी कुछ बुराई नहीं है, ऐसी दशा में मनुष्य दूसरी गुणवती स्त्री से विवाह कर सकता है।

जो पुरुष व्यभिचार आदि बुराइयों के बिना स्त्री को युवा अवस्था में त्याग देता है वह मर कर दूसरे जन्म में वन्ध्या स्त्री बनता है।

जो स्त्री रोगी पति का तिरस्कार करती है वह कुतिया आदि की बुरी योनि में जन्म पाती है।

शरीर की शुद्धि

शुद्धि करने का उपाय मनुष्य को सदा बड़े ही प्रयत्न से करना चाहिए। क्योंकि बड़प्पन की स्थिति और पुष्टि

का मूल कारण—असली जड़—पवित्रता ही है। शास्त्रों में शुद्धि दो प्रकार की बतलाई गई है। एक तो बाहरी शरीर की शुद्धि, दूसरी भीतर की। बाहरी शरीर की शुद्धि जल से और मिट्टी से होती है और भीतर की शुद्धि मन को छल-कपट-रहित करने से होती है। अशुद्ध मन से बाहर की शुद्धि अच्छी मानी गई है और बाहरी शुद्धि से भीतर की शुद्धि श्रेष्ठ है। इन दोनों प्रकार की शुद्धि का करने वाला ही ठीक ठीक शुद्ध माना जाता है, दूसरा नहीं।

शौच करने के समय मूत्रेन्द्रिय में एक बार, गुदेन्द्रिय में तीन बार, बाये हाथ में दश बार, दोनों को मिला कर सात बार और दोनों पैरों में तीन बार मिट्टी लगा कर धोना चाहिए। यह शुद्धि गृहस्थियों के लिए बतलाई गई है। ब्रह्मचारी को गृहस्थ से दूनी, वानप्रस्थी मनुष्य को गृहस्थ से तिगुनी और संन्यासी को गृहस्थ से चौगुनी शुद्धि करनी चाहिए। हर बार पानी इतना डालना चाहिए कि लगाई हुई मिट्टी बिलकुल धुल जावे।

जिन पुरुषों का अन्तःकरण शुद्ध नहीं होता वे चाहे हज़ार बार मिट्टी लगावे या सैकड़ों भरे हुए घड़े अपने ऊपर डाले तो भी शुद्ध नहीं होते।

योगाभ्यास तथा तत्त्वज्ञान-विषय

प्राणायाम, ध्यान, प्रत्याहार, धारणा, तर्क और समाधि ये छः योग के अङ्ग—भाग—माने गये हैं।

मनुष्य आनन्द की प्राप्ति के लिए प्राणिमात्र के साथ ईर्ष्या, द्वेष, वैर विरोध छोड़ कर मित्र-दृष्टि करे। इस प्रकार की मैत्री से योगी ब्रह्मलोक में पहुँच जाता है।

सिर्फ़ वन में रहने से या अनेक शास्त्रों को पढ़ने विचारने से, व्रत, तप और यज्ञों के करने से ही किसी को योग नहीं होता। पद्मासन लगा कर बैठे रहने से, नाक के आगे के हिस्से को देखते रहने से और शास्त्र विरुद्ध अनेक प्रकार की दिखावटी शुद्धि करने से भी किसी को योगी नहीं कह सकते। मन्त्र जपने से, मौन रहने से, धूनी लगाने से, अनेक प्रकार के पुण्य करने से और लोक व्यवहारों में लगा रहने से भी कोई योगी नहीं हो सकता। किन्तु योग के विचार में तत्परता होने से, बार बार लगातार योग का अभ्यास करने से, योग ही में अटल श्रद्धा विश्वास होने से और बार बार संसारी विषयों से बड़ी उदासीनता और वैराग्य होने से योग सिद्ध होता है, नहीं तो नहीं। परमात्मा की चिन्ता का आनन्द, पवित्र रहने, अपने आत्मा में क्रीड़ा करने से और सब प्राणियों में एक सी दृष्टि होने से योग सिद्ध होता है, अन्यथा नहीं।

संसारी विषयों में जिसका चित्त लगा रहता है, वह कभी योगसिद्धि नहीं पा सकता। इसलिए योगी पुरुष विषयों की फँसावट को बड़े यत्न से छोड़ दे।

मन को संसार की वृत्तियों से हटाकर, निर्मल करके और क्षेत्रज्ञ-आत्मा को परमात्मा के ध्यान में जोड़ देने को मुक्ति कहते हैं। यही असली योग है।

योगी पुरुष, मन की मलिनता, अविद्या, चित्त चञ्चलता, लज्जा और शङ्का इन चित्त के व्यापारों जीत कर मन को अपने वश में करे। पाँच इन्द्रिय कुटु रूप हैं। उन इन्द्रियों में छठा मन बहुत बड़ा है। उसे देवता, मनुष्य और राक्षस सभी जीतने में असमर्थ हो हैं। कोई ही जीत पाता है। इसी का जीत लेना परम ध कहाता है।

इन्द्रियों को मन से हटा कर और मन को आत्म लगा कर, सब संसारी पदार्थों से रहित होकर आत्मा परमात्मा के ध्यान में लीन कर दे।

जो दूसरे के राज्य को जबरदस्ती छीन ले वह श नहीं कहाता किन्तु सच्चा शूर वही है जिसने सब इन्द्रि को जीत लिया हो।

विषयों में फँसने वाली सब इन्द्रियों को आत्मा म लीन करके जो योगी रमता है, वही सच्चा ध्यान और सच्चा ज्ञान है, बाकी सब प्रपञ्च है।

संसारी विषय भोगों को त्याग कर आत्मा की शक्ति रूप से निश्चय कर, मन का निश्चल होना समाधि कहाता है।

योगी ब्रह्म को स्वयं ही जान सकता है। ब्रह्म-ध्यान का आनन्द कहने में नहीं आ सकता। और जो पुरुष योग मार्ग से हीन होता है वह ब्रह्म को इस प्रकार नहीं जान सकता जिस प्रकार कि जन्म का अन्धा पुरुष घड़े का रूप नहीं देख सकता।

सदा योगाभ्यास करने वाला पुरुष ब्रह्म को खुद जान सकता है। यह अत्यन्त सूक्ष्म होने से सनातन परब्रह्म दिखाने के योग्य नहीं होता। उसे कोई किसी को दिखला नहीं सकता।

जिसने मन की मलिमता त्याग दी वह विषयों के साथ लड़ सकता है अर्थात् सन्यासी हो सकता है। जिसने मन की मलिमता नहीं छोड़ी वह संन्यासी होने के योग्य नहीं होता, क्योंकि उसको तो संसारी विषय ही दबा लेते हैं। जिस प्रकार तरङ्गों के उठने से जल एक क्षण भी नहीं ठहर सकता इसी प्रकार विषय-वासनाओं की हवा से जिसका मन चलायमान हो जाता है वह संन्यासी भी बुरे कामों में ज़रूर फँस जाता है।

संन्यासी आठ प्रकार की बुरी वासनाओं से सदा ब्रह्मचर्य की रक्षा रक्खे, अकेला वन में विचरे, किसी के साथ अधिक प्रेम न करे, किन्तु परमात्मा को ही अपना प्रेमी समझे।

१६—गौतम-स्मृति

इस स्मृति में ब्रह्मचर्य आश्रम के धर्म, ब्रह्मचारी के नित्य नियम, आदि ऐसे विषय हैं जिनके विषय में हम पहली स्मृतियों में संक्षेप रूप से लिख आये हैं। इसलिए यहाँ ग्रन्थ के अधिक बढ़ जाने के भय से दुबारा उन विषयों पर लिखना उचित नहीं समझा।

१७–शातातप-स्मृति

पूर्व जन्म में किये पापों के चिह्न

जिस मनुष्य ने प्रायश्चित्त के योग्य काम करके प्रायश्चित्त नहीं किया वह मरने के बाद नरक भोग कर पाप चिह्नों के सहित मनुष्य-योनि में जन्म लेता है।

पातक बताने वाले चिह्न जन्म-जन्मान्तर तक पापियों का हुआ करते हैं। बार बार प्रायश्चित्त और पश्चात्ताप करने से पातक कम हो जाता है और चिह्न भी छूट जाते हैं।

महापातक का चिह्न सात जन्म तक, उपपातक का पाँच जन्म तक और दूसरे मामूली पापों का चिह्न तीन जन्म तक ज़ाहिर होता रहता है।

बुरे कामों को करने से पैदा होने वाले रोग, जप, देवपूजन, हवन और दान आदि शुभ कर्मों के करने से कम हो जाते हैं।

पूर्वजन्म में किया हुआ पाप नरक भोगने के बाद व्याधि रूप बन कर दुःख देता है। उस रोग की

शान्ति, जप आदि बड़े बड़े कठिन तथा पुण्य कर्मों के करने से होती है।

कुष्ठ, क्षयी, संग्रहणी, मूत्रकृच्छ्र, मृगी, भगन्दर, भयानक फोड़ा, बवासीर और आँखों का नाश इत्यादि रोग, पहले जन्म में महापापों के करने से हुआ करते हैं। इन पापरूप रोगों की निवृत्ति के लिए बड़े बड़े दान, तप और यज्ञ करने चाहिएँ।

धर्म का विचार

सुख को चाहने वाला मनुष्य अपने कल्याण के लिए धर्म को अच्छी तरह जाने, माने और सुने। धर्म को जान कर उसका सेवन करने वाला मनुष्य इस लोक में प्रामाणिक धर्मात्मा कहाता है, उसकी अत्यन्त प्रशंसा होती है और जन्मान्तर में वह सुख भोगता है।

वेद और धर्म-शास्त्रों में मनुष्य के लिए जो कर्त्तव्य (करने योग्य काम) बतलाया गया है वही धर्म कहाता है। जिस बात का प्रमाण वेद और धर्म-शास्त्रों में न मिले उसके लिए शिष्ट (धर्मात्मा) मनुष्यों का आचरण ही प्रमाण मानना चाहिए। जिनको किसी प्रकार की इच्छा न हो, जो निर्लोभी तथा निष्काम हों ऐसे पुरुष शिष्ट कहाते हैं। धर्म वही है जो काम लोभ आदि के कारण के बिना किया जाय।

आदर्श से पूर्व, कालक वन से पश्चिम, पारियात्र से उत्तर, हिमालय से दक्षिण और विन्ध्याचल से उत्तर में जो देश है वह आर्यावर्त्त कहाता है। उस आर्यावर्त्त देश में जो जो धर्म और आचार हैं वे सब विश्वास करने योग्य हैं। किन्हीं किन्हीं आचार्यों ने गङ्गा और यमुना के बीच के देश को आर्यावर्त्त बतलाया है। और किन्हीं किन्हीं आचार्यों की राय है कि जहाँ तक करसायल हिरन स्वभाव से विचरते हैं वहाँ तक के देशों में ब्रह्मतेज की प्रधानता होने से धर्म की ज़मीन है।

तीनों वेदों की विद्या को जो भले प्रकार जानने वाले हों, वे धर्म का तत्त्व जानने वाले विद्वान् जिस धर्म को बतलावें उस धर्म को पवित्र करनेवाला और शोधक समझना चाहिए। उन विद्वानों के बतलाये हुए धर्ममार्ग को अच्छे प्रकार श्रद्धापूर्वक मानना चाहिए और उसमें किसी प्रकार की शंका न करनी चाहिए।

विद्या कैसे पुरुष को पढानी चाहिए?

विद्या ने ब्राह्मण के पास आकर कहा कि हे ब्राह्मण! तू मेरी रक्षा कर, मैं तेरा ख़ज़ाना हूँ। निन्दा करने वाले, कठोर बोलने वाले और लम्पट शिष्य को यदि मुझे न देगा तो मैं अपना प्रभाव या फल दिखलाऊँगा।

आचार्य स्वयं बहुत दुःख सहता हुआ और शिष्य को अमृत पिलाता हुआ, वेद को पढ़ानारूप सत्य कर्म की

पवित्र ध्वनि (आवाज़) से शिष्य के दोनों कान भर देता है और शिष्य के, मानस (मन से पैदा हुई), वाचिक (वाणी से पैदा हुई), और कायिक (शरीर से होने वाली), बुराइयों को नष्ट कर देता है। शिष्य को चाहिए कि ऐसे पढ़ाने वाले को माता पिता के समान समझे, उससे कभी दुश्मनी न करे। क्योंकि उसने विद्या पढ़ाने के साथ साथ क्या क्या अच्छी बातें नहीं सिखलाईं? अर्थात् सभी भलाई की बातें अध्यापक सिखला देता है।

जो शिष्य, मन, वाणी तथा शरीर से अपने गुरु का आदर नहीं करते, वे जिस प्रकार गुरु की रक्षा करने के योग्य नहीं होते, इसी प्रकार पढ़ी हुई विद्या भी ऐसे कुशिष्यों की रक्षा नहीं करती।

विद्या कहती है कि हे ब्राह्मण! तुम जिसको शुद्ध, अप्रमादी, ब्रह्मचारी और बुद्धिमान् समझो और जो तुम पढ़ाने वाले—से कभी द्रोह या विरोध न करता हो, ऐसे विद्या के ख़ज़ाने की रक्षा करनेवाले शिष्य को मुझे दो अर्थात् पढ़ाओ।

जिस प्रकार आग घास को जला देती है वैसे ही गुरु का अनादर करनेवाले शिष्य को तथा ऐसे कुशिष्य को पढ़ाने वाले अध्यापक को भी वेद-विद्या भस्म कर देती है। इसलिए, यथाशक्ति सम्मान न करने वाले शिष्य को विद्या न पढ़ानी चाहिए।

वाल-गीतावलि

लेखक

पण्डित सुन्दरलाल शर्मा, द्विवेदी

प्रकाशक

इण्डियन प्रेस, प्रयाग

१९११

श्री

बाल-गीतावलि

लेखक

पण्डित सुन्दरलाल शर्मा, द्विवेदी

प्रकाशक

इण्डियन प्रेस, प्रयाग

१९११

बालसखा पुस्तकमाला । पुस्तक सोलहवीं ।

बाल-गीतावलि

अर्थात्

महाभारत से अजगरगीता, गृहस्थगीता, चिरकारिगीता, विचख्नुगीता, बोध्यगीता, पिङ्गलागीता, शम्पाकगीता, पुत्रगीता और मङ्किगीता का हिन्दी में सरल सार ।

लेखक

[धनमऊ (ज़िला मैनपुरी) निवासी]

पण्डित सुन्दरलाल, द्विवेदी

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, प्रयाग

१९११

सूची

विषय	पृष्ठ

भूमिका

महाभारत विद्यासागर है। उसमें अनन्त विद्यायें भरी हुई हैं। उसका जितना ही पठनपाठन किया जावे अच्छा है। जितना ही उसे पढ़ते जाइए आप को नई नई बातें मालूम होती जावेंगी। जिस विषय को आप देखना चाहें महाभारत देखिए। यदि आप अपने आर्यावर्त्त का महत्त्व देखना चाहें तो महाभारत पढ़िए। मतलब यह कि महाभारत विद्या का केन्द्र है। उसी महाभारत के शान्तिपर्व मोक्ष धर्म में से हमने इस 'बालगीतावलि' में अजगर-गीता आदि नौ गीताओं का संग्रह किया है। ये नौ गीतायें ऐसी शिक्षाप्रद हैं, ऐसे सच्चे मार्ग को बतलाने वाली हैं कि उनके अनुसार चलने से मनुष्य बहुत कुछ अपना कल्याण कर सकता है।

इस पुस्तक के पढ़ने से पाठकों को मालूम होगा कि मनुष्य को संसार-यात्रा किस तरह करनी चाहिए। मनुष्य अपने को कैसा बना कर सुख का भागी हो सकता

मनुष्य को कैसा बर्ताव रखना चाहिए जिससे संसार में रह कर दुःख न उठाना पड़े।

यह पुस्तक मनुष्य मात्र के लिए कल्याणप्रद है। प्रत्येक मनुष्य इसे पढ़ कर अपना सुधार कर सकता है। यथा सम्भव हमने इसकी हिन्दी बहुत सरल रक्खी है जिस से थोड़ा पढ़े लिखे भी इसे पढ़ कर लाभ उठा सकें। यह पुस्तक आबाल वृद्ध सबके पढ़ने योग्य है।

यदि पाठक इसको पढ़ कर कुछ भी लाभ उठा सकें तो मैं अपने श्रम को सफल समझूँगा।

२५ मई १९०९ } सुन्दरलाल शर्मा, द्विवेदी।

एक दिन राजा युधिष्ठिरजी महाराज भीष्मजी से पूछने लगे कि—हे भीष्मजी, आप संसार के सब व्यवहारों को भली भाँति जानते हैं, यही नहीं किन्तु आप धर्म को तथा धर्मकार्यों को भी अच्छी तरह जानने वाले हैं। इस लिए आप मुझे यह बतलाइए कि मनुष्य किस तरह का बर्ताव करता हुआ शोक से निवृत्त हो सकता है? मनुष्य को संसार में विचरते हुए—संसारी मनुष्यों के साथ रहते हुए—कैसा बर्ताव करना चाहिए, जिससे शोक दूर रहे, शोक कभी न सताये? आप यह भी

भीष्मजी राजा युधिष्ठिर से कहने लगे कि हे यु
अब प्रह्लाद ने अजगर ऋषि से ऊपर लिखी हुई
तब धर्म के भेदों को जानने वाले बुद्धिमान् अजगर
कोमल और प्रिय वाणी से प्रह्लाद को संबोधित
लगे :—

हे प्रह्लाद, विना निमित्त-कारण के भूतों की
होती है। उसको आप देखिए। आप उनकी घटती
और नाश पर भी नज़र डालिए। मुझको किसी हाल
किसी भी चीज़ को देख कर न तो आनन्द ही होता है
न शोक ही होता है। मैं चीज़ों को देख कर न सुख मान
हूँ और न उनके नाश हो जाने पर दुख। सांसारि
पदार्थों में मनुष्य की प्रवृत्ति का होना स्वभाव से दे
जाता है। सांसारिक प्रवृत्तियाँ स्वभाव के अधीन हैं।
किसी चीज़ से संतुष्ट नहीं होता। हे प्रह्लाद, मैं देख
हूँ कि संसार में जिसका जिसके साथ संयोग हुआ
उससे पृथक् हो रहा है। संयोग का अवश्य
है। इसी प्रकार जो इकट्ठा किया जाता है उसका
विनाश होता है। जब मैं संयोग को वियोगाभिमुख
इकट्ठा किये हुए को विनाशाभिमुख देखता हूँ तो मेरा
किसी भी चीज़ में आसक्त या विकारयुक्त नहीं होता।
यह ख़याल कभी नहीं होता कि हा! इसके साथ मैं बहु
दिन तक रहा, आनन्द में दिन बिताये, अब इससे जुदा
होती है। कैसे दिन कटेंगे। क्या होगा? इस तरह का
कभी ख़याल नहीं करता। मैं यह भी कभी ख़याल कर

करता कि इस चीज़ के न रहने से, जो मेरे पास बहुत दिन से थी, कोई हानि होगी, मेरा इसके बिना कोई काम बिगड़ेगा।

प्रयोजन यह कि संसार में जितने हानि-लाभ होते हैं, जितने सुख-दुख होते हैं, जितने जीवन मरण होते दिखाई देते हैं वे सब स्वभाव से ही हुआ करते हैं। उनकी स्वाभाविकता यही है। उन हानि-लाभ रूप झगड़ों को कभी कोई दूर नहीं कर सकता। हानिलाभ मनुष्य के सहचारी होते हैं।

हे प्रह्लाद, जो मनुष्य यह देख रहा है कि सत्व गुण धारण करने वाले प्राणी भी नष्ट हो जाते हैं, सात्विक वृत्ति मनुष्य भी संसार में नहीं बने रहते। जो उत्पत्ति और मृत्यु को भले प्रकार जानने वाला है उस मनुष्य के लिए संसार में कोई भी कार्य बाक़ी नहीं रहता। हे प्रह्लाद, मैं देख रहा हूँ कि ये अपना समय आजाने पर समुद्र में बहुत बड़े बड़े तथा बहुत छोटे छोटे जल के जन्तु भी मर रहे हैं। हे असुराधिप प्रह्लाद, मैं जड़, चेतन और बड़े बड़े राजाओं का भी मरना देख रहा हूँ। हे दानवो-त्तम प्रह्लाद, आकाश में उड़ने वाले पक्षी और बड़े बड़े जलयानों का भी ठीक समय पर मरना अवश्य हो आता है। हे प्रह्लाद, आकाश में चलते हुए छोटे बड़े नक्षत्र, ग्रह तारों को यथासमय गिरता हुआ—चलायमान होता हुआ—मैं देख रहा हूँ। इस प्रकार सब प्राणियों को, सब

जड़ और चेतन को मौत से दबाया हुआ देख जान कर सबमें समानता से मैं उदासीन बुद्धि और कृतकृत्य हुआ सोता हूँ, मैं अपने को आनन्द-पूर्वक सोता हूँ। मुझ को किसी बात नहीं रही। मैं सब चीज़ों को नाशवान् जानता कभी नहीं मानता। संसार में जो पैदा हुआ है दिन अवश्य नष्ट होगा। यह स्वाभाविक बात है। किसी चीज़ के नष्ट हो जाने से दुख, या किसी चीज़ मिल जाने से अपार आनन्द क्यों मानूँ। उत्पत्ति विनाश स्वभाव से होने वाले हैं। इनको कोई कि प्रकार मेटना चाहे तो मेट नहीं सकता। मैंने इस को अच्छी तरह जान लिया है। इसलिए अब मैं आ कर रहा हूँ।

कभी कभी अकस्मात्, बड़े बड़े और अच्छे ग्रास मुझ को मिल जाते हैं और उन्हीं को मैं खाता कभी कभी बहुत दिन तक बिना खाये हुए ही पड़ा र हूँ। खाने को कुछ भी नहीं मिलता। कभी कभी मुझ को बहुत सुस्वादु अन्न खिलाते हैं। कभी कभी मुझे बहुत अन्न मिल जाता है, कभी कुछ थोड़ा मिलता कभी कभी बहुत ही थोड़ा मिलता है। यहाँ तक कि कभी मिलता ही नहीं। कभी मैं कोमल कण और भूसी ही स्वाद लेता हूँ—कण और भूसी ही खाकर रह जा हूँ। कभी कभी पिण्याक (पीना) भी खाता हूँ।

भी चावल आदि अति उत्तम चीज़ें खाता हूं और कभी कभी बिना स्वाद के भोजन मिलते हैं उन्हीं को खा लेता हूं मैं, कभी तो, अच्छे पलंग पर सोता हूं और कभी ज़मीन पर ही पड़ रहता हूं।

किसी समय मैं सन और अतसी के कपड़े पहनता हूं और कभी कभी बेशक़ीमत रेशमी कपड़े पहनता हूं।

अकस्मात् धर्मानुकूल प्राप्त हुए अच्छे या बुरे सामानों का मैं तिरस्कार नहीं करता—मुझे कोई चीज़ कैसी भी [illegible]नुसार मिल आवे उसको बुरी नज़र से नहीं देखता। ऊपर कहे हुए जो अत्यन्त दुर्लभ उपभोग हैं—रेशमी कपड़ा वगैरह जो बड़ी मुशकिल से मिल सकते हैं उनकी मैं इच्छा भी नहीं रखता कि इसी प्रकार के अच्छे अच्छे सामान, अच्छी अच्छी चीज़ें मिलती रहें।

प्रयोजन यह कि भली बुरी चीज़ें अपने गुज़ारे के लिए कैसी भी मिल आवे या किसी वक्त न भी मिले तो भी मुझे कुछ भी चिन्ता नहीं होती। मेरा यह ख़याल भी नहीं होता कि आज खाने का या पहनने का अच्छी चीज़ या कपड़ा मिल गया है आगे को भी ऐसा ही मिलता रहे तो अच्छा है। अकस्मात् जो चीज़ जिस हालत में मुझे मिल जाती है मैं उसी से सन्तुष्ट हो जाता हूं।

मैंने जिस प्रकार अपने रहन-सहन का ढंग बतलाया है यह मेरा मत है। यह मत ऐसा वैसा नहीं है किन्तु असल

दुर्गुणों से उदासीन रहता हुआ मोक्ष-सम्बन्धी कार्यों में मग्न रहता है।

जो मनुष्य ज्ञानरूपी सुख को प्राप्त कर चुके हैं, वे आनन्द, शोक, घमण्ड और ईर्ष्या आदि से रहित हैं— उनमें हर्ष-शोकादि हुआ ही नहीं करते। ऐसे ज्ञानी मनुष्यों को हानि, लाभ, सुख, दुःख आदि भी नहीं सताते।

जो मनुष्य बुद्धि को तो प्राप्त हुए नहीं किन्तु अपनी मूर्खता से उनसे पृथक् हो गये हैं, ऐसे ही मनुष्यों का सांसारिक हर्ष और शोक अधिकता से घेरा करते हैं— सताया करते हैं। संसार में मूर्ख मनुष्य बड़े घमण्ड अभिमानी—मूर्खता के कारण अपने आपे से बाहर होकर सदा इस प्रकार प्रसन्न रहा करते हैं जैसे स्वर्ग में देवगण प्रसन्न रहते हैं।

सुख दुःख को हटा देता है—सुख के मिलते ही कोसों दूर भाग जाता है। आलस्य दुःख को पैदा करता है। चतुराई से सुख का उदय होता है और चतुर मनुष्य में लक्ष्मी के साथ ऐश्वर्य्य वास करता है; आलसी मनुष्य में नहीं। प्रयोजन यह है कि आलस्य मनुष्य को दुःख ही देने वाला है। आलसी को सुख की आशा कभी नहीं करनी चाहिए।

दुर्गुणों से उदासीन रहता हुआ मोक्ष-सम्बन्धी कार्यों में मग्न रहता है।

जो मनुष्य ज्ञानरूपी सुख को प्राप्त कर चुके हैं, वे आनन्द, शोक, घमण्ड और ईर्ष्या आदि से रहित हैं—उनमें हर्ष-शोकादि हुआ ही नहीं करते। ऐसे ज्ञानी मनुष्यों को हानि, लाभ, सुख, दुःख आदि भी नहीं सताते।

जो मनुष्य बुद्धि को तो प्राप्त हुए नहीं किन्तु अपनी मूर्खता से उससे पृथक् हो गये हैं, ऐसे ही मनुष्यों को सांसारिक हर्ष और शोक अधिकता से घेरा करते हैं—सताया करते हैं। संसार में मूर्ख मनुष्य बड़े घमण्ड और अविद्या—मूर्खता के कारण अपने आपे से बाहर होकर सदा इस प्रकार प्रसन्न रहा करते हैं जैसे स्वर्ग में देवगण प्रसन्न रहते हैं।

सुख दुःख को हटा देता है—सुख के मिलते ही दुःख कोसों दूर भाग जाता है। आलस्य दुःख को पैदा करता है। चतुराई से सुख का उदय होता है और चतुर मनुष्य में लक्ष्मी के साथ ऐश्वर्य वास करता है, आलसी मनुष्य में नहीं। प्रयोजन यह है कि आलस्य मनुष्य को दुःख ही देने वाला है। आलसी को सुख की आशा कभी नहीं करनी चाहिए।

सुख हो या दुःख, प्रिय हो या अप्रिय, इनमें से कोई भी क्यों न हो, पर बुद्धिमान् को चाहिए कि सुख दुःख में लिप्त होकर, उन सुख दुःखादि से पराजित न होता हुआ—

न हारता हुआ—अपने मन से धैर्यवान् होकर सबको सहे। जिसमें सुख-दुख के सहने की शक्ति होती है वह अधिक सुख के मिलने पर अपने को अत्यन्त सुखी नहीं मानता और दुख के मिलने पर अत्यन्त दुखी नहीं होता। ऐसा ही मनुष्य सदा सुखी रहता है और जो थोड़े से सुख में अपने को अत्यन्त सुखी और थोड़ा सा दुख आ जाने पर अपने को अत्यन्त दुखी मानता है उसको सुख और दुख दोनों में से किसी के भी प्राप्त होने पर दुख ही दुख समझना चाहिए। वास्तव में उसको सुख नहीं होता, वह सुख भी उसके लिए दुख ही है। इसलिए मनुष्य को धैर्यवान् होकर संसार यात्रा करनी चाहिए, तभी सुखी हो सकता है।

शोक के हजारों स्थान होते हैं और भय के भी सैकड़ों ही स्थान हुआ करते हैं। ये शोक और भय मूर्ख मनुष्य को ही प्रति दिन सताया करते हैं। उनका असर चतुर मनुष्य पर कुछ भी नहीं पड़ता।

इन छः प्रकार के मनुष्यों को शोक नहीं सताता। वे छः ये हैं—

१—बुद्धिमान्, २—जिनको बुद्धि प्राप्त हो गई है, ३—जो शास्त्रों के पढ़ने लिखने में सदा लगे रहते हैं, जिन्होंने अपना स्वभाव ही शास्त्र पढ़ने का बना लिया है, ४—जो दूसरों की कभी बुराई नहीं करते, ५—जो अपने मन के वेग को रोक लेते हैं और ६—जो अपनी इन्द्रियों

दुर्गुणों से उदासीन रहता हुआ मोक्ष-सम्बन्धी कार्यों में मग्न रहता है।

जो मनुष्य ज्ञानरूपी सुख को प्राप्त कर चुके हैं, वे आनन्द, शोक, घमण्ड और ईर्ष्या आदि से रहित हैं—उनमें हर्ष-शोकादि हुआ ही नहीं करते। ऐसे ज्ञानी मनुष्यों को हानि, लाभ, सुख, दुःख आदि भी नहीं सताते।

जो मनुष्य बुद्धि को तो प्राप्त हुए नहीं किन्तु अपनी मूर्खता से उससे पृथक् हो गये हैं, ऐसे ही मनुष्यों को सांसारिक हर्ष और शोक अधिकता से घेरा करते हैं—सताया करते हैं। संसार में मूर्ख मनुष्य बड़े घमण्ड और अविद्या—मूर्खता के कारण अपने आपे से बाहर होकर सदा इस प्रकार प्रसन्न रहा करते हैं जैसे स्वर्ग में देवगण प्रसन्न रहते हैं।

सुख दुःख को हटा देता है—सुख के मिलते ही दुःख कोसों दूर भाग जाता है। आलस्य दुःख को पैदा करता है। चतुराई से सुख का उदय होता है और चतुर मनुष्य में लक्ष्मी के साथ ऐश्वर्य वास करता है, आलसी मनुष्य में नहीं। प्रयोजन यह है कि आलस्य मनुष्य को दुःख ही देने वाला है। आलसी को सुख की आशा कभी नहीं करनी चाहिए।

सुख हो या दुःख, प्रिय हो या अप्रिय, इनमें से कोई भी क्यों न हो, पर बुद्धिमान् को चाहिए कि सुख-दुःख में लिप्त होकर, उन सुख-दुःखादि से पराजित न होता हुआ—

न हारता हुआ—अपने मन से धैर्यवान् होकर सबको सहे। जिसमें सुख दुःख के सहने की शक्ति होती है वह अधिक सुख के मिलने पर अपने को अत्यन्त सुखी नहीं मानता और दुःख के मिलने पर अत्यन्त दुःखी नहीं होता। ऐसा ही मनुष्य सदा सुखी रहता है और जो थोड़े से सुख में अपने को अत्यन्त सुखी और थोड़ा सा दुःख आ जाने पर अपने को अत्यन्त दुःखी मानता है उसको सुख और दुःख दोनों में से किसी के भी प्राप्त होने पर दुःख ही दुःख समझना चाहिए। वास्तव में उसको सुख नहीं होता, वह सुख भी उसके लिए दुःख ही है। इसलिए मनुष्य को धैर्यवान् होकर संसार-यात्रा करनी चाहिए, तभी सुखी हो सकता है।

शोक के हज़ारों स्थान होते हैं और भय के भी सैकड़ों ही स्थान हुआ करते हैं। ये शोक और भय मूर्ख मनुष्य को ही प्रति दिन सताया करते हैं। उनका असर चतुर मनुष्य पर कुछ भी नहीं पड़ता।

इन छः प्रकार के मनुष्यों को शोक नहीं सताता। वे छः ये हैं—

१—बुद्धिमान्, २—जिनको बुद्धि प्राप्त हो गई है, ३—जो शास्त्रों के पढ़ने लिखने में सदा लगे रहते हैं, जिन्होंने अपना स्वभाव ही शास्त्र पढ़ने का बना लिया है, ४—जो दूसरों की कभी बुराई नहीं करते, ५—जो अपने मन के वेग को रोक लेते हैं और ६—जो अपनी इन्द्रियों

को अपने वश में रखते हैं, इन्द्रियों को चलायमान नहीं होने देते।

मनुष्य अपने को ऊपर कहे हुए ६ प्रकार का बनावे। इस तरह मन कर, बुद्धिमान् मनुष्य अपने चित्त को साव धान करके उदय और अस्त को जानता हुआ शोक को अपने पास नहीं फटकने देता। वह चतुर मनुष्य जान जाता है कि किन कारणों से शोक का उदय हुआ करता है और किस प्रकार वह शोक दबाया जा सकता है। ऐसा ज्ञान लेने पर और बर्ताव में लाने पर वह मनुष्य अत्यन्त सुखी होता है।

जिस कारण से शोक, ताप, दुःख और आयास—खेद उत्पन्न हुआ हो उस उत्पन्न होने वाले कारण के एक अङ्ग को ही छोड़ दे—जिस कारण से ये शोकादि पैदा हुए हों उस कारण के एक अङ्ग को भी—एक हिस्से को भी—छोड़ देने से कारण का अङ्ग टूट जाता है फिर न वह कारण ही रहता है और न कारण से पैदा होने वाले शोकादि ही बाकी रहते हैं।

जब मनुष्य किसी पदार्थ में ममता कर लेता है तब उसके सम्बन्ध से संसार के सब पदार्थ उस मनुष्य को दुःख देने में समर्थ हो जाते हैं। पर मनुष्य कामना को जिस जिस हिस्से को छोड़ता जाता है, उस उस से सुख मिलता जाता है। और यह भी निश्चय ही है कि कामना—तृष्णा—के साथ साथ चलने वाला मनुष्य तृष्णा के साथ ही नष्ट हो जाता है।

संसार में जो काम-सुख माना जाता है और जो दिव्य—पवित्र—स्वर्ग का बड़ा सुख कहलाता है, ये दोनों ही सुख रूप तृष्णा के नाश हो जाने के बाद पैदा हुए सन्तोषरूपी सुख की सोलहवीं कला—सोलहवे भाग—के बराबर भी नहीं हैं। और भी अधिक समझा कर ब्राह्मण राजा से कहता है:—

हे राजन्, कोई पण्डित हो, या मूर्ख हो, या शूर-वीर हो पर प्रत्येक मनुष्य को, पूर्व जन्म में मन, वाणी या शरीर से जो कुछ बुरे या भले कर्म किये हैं, उन किये हुए शुभाशुभ कर्मों का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है—यदि कर्मों के फलों से कोई छूटना चाहे तो कदापि नहीं छूट सकता।

इसी प्रकार प्रिय और अप्रिय, सुख और दुःख मनुष्यों में कर्मानुसार ही लौट लौट कर जाते और आते हैं।

मनुष्य जब यह मालूम कर लेता है कि संसार में हमको जो कुछ सुख, दुःख मिल रहा है यह हमारे किये हुए कर्मों का ही फल है। वह हमको अवश्य भोगना पड़ेगा। उसको भोगे बिना कोई बच नहीं सकता। इसलिए मुझे भी भोगना चाहिए। इस प्रकार बुद्धि को स्थिर बना कर पण्डित मनुष्य संसार में सुख-पूर्वक रहा करता है। बुद्धिमान् को चाहिए कि सब कामों की बुराई करता हुआ क्रोध को सर्वथा छोड़ देवे—सांसारिक अभिलाषों की ओर से अपने मन को हटा कर अपने में गुस्सा कभी न आने देवे।

क्योंकि—

बुद्धिमान् मनुष्य, इस प्राणी के शरीर के भीतर ठहरे हुए क्रोध को ही, मन से उत्पन्न होने वाले हृदय में ठहरे हुए इस क्रोध को ही ठहरने वाला—कुछ काल तक रहने वाला मृत्यु (मौत) कहते और मानते हैं।

ब्राह्मण के कहने का प्रयोजन यह है कि संसार में मनुष्य पर जो बड़े बड़े दुःख अकस्मात् आ पड़ते हैं या उसको भोगने पड़ते हैं उन दुःखों का कारण पूर्व जन्म में किये हुए कर्म ही हैं। इस प्रकार होनहार बात का अब बुद्धिमान् समझ ले तो शोक कम हो जाता है। दूसरी बात यह कि यह दुःख मेरे ही किये हुए कर्म का फल है जब मैंने ही किया है तो मैं ही भोगूँगा भी मेरे ऊपर किसी ने अन्याय नहीं किया है, इत्यादि विचारों से मनुष्य की घबराहट जाती रहती है। अब यह ब्राह्मण वास्तविक सुख की ओर झुकता हुआ कहता है—

जिस प्रकार कछुआ अपने शरीर के अंगों को समेट कर अपने भीतर कर लेता है उसी प्रकार जब योगी मनुष्य अपनी सब कामनाओं—सांसारिक सब इच्छाओं—को समाप्त कर देता है तब वह आप में मिल होकर अपने में ही ज्योतिःस्वरूप आत्मतत्त्व को देखता है।

जब मनुष्य किसी से भय नहीं करता और जब दूसरे प्राणी इस मनुष्य से नहीं डरते, पर जब मनुष्य की कोई इच्छा और उसका कोई मित्र या शत्रु नहीं रहता तब इस

मनुष्य को ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है। तात्पर्य यह कि पर-ब्रह्म परमात्मा सदा निडर है। वह कभी किसी से नहीं डरता, डरने के कारण जो हिंसा, चोरी आदि हैं वे उसमें हैं ही नहीं। इसी प्रकार उस परमात्मा से भी कोई नहीं डरता। क्योंकि न वह किसी को दुःख देता है न सताता है। जो दूसरों को दुःख पहुँचाते हैं उन्हींसे सब डरा करते हैं। ईश्वर में रागद्वेष भी नहीं है —न वह किसी से विशेष प्रीति ही करता है, न वह किसी से द्वेष ही करता है वह समस्त संसार को सम दृष्टि से देखता है। ये ही गुण जब मनुष्य में आ जाते हैं, तब ब्रह्म के समान निर्दोष होकर उसको पा सकता है। अन्यथा नहीं। वह ब्राह्मण राजा सेनजित् से फिर उसी बात को दुहराता हुआ कहता है कि—

हे राजन्! तुम सच, झूठ, शोक, आनन्द, भय, अभय प्रिय और अप्रिय को छोड़ कर अपने आत्मा को शान्त बनाओ, अच्छी तरह प्रशान्तात्मा बन जाओ।

जब मनुष्य मन, वाणी, और कर्म से सब प्राणियों में—संसार के सब जीवधारियों में—पाप का विचार नहीं रखता अर्थात् सबको बराबर देखा करता है तब उस मनुष्य को ब्रह्म प्राप्त हो जाता है। प्रयोजन यह है कि परमात्मा में सत्यासत्य दोष कुछ नहीं है। वह सब पापों से रहित सदा निर्दोष है, शुद्ध है। जब मनुष्य भी अपने को सब तरह निर्दोष बना लेता है तब वह ईश्वर को पा सकता है।

तृष्णा एक ऐसी बुरी बला है कि जो दुर्बुद्धि मनुष्यों से त्यागी नहीं जाती। और, जैसा जैसा मनुष्य वृद्ध होता जाता है वैसी ही वैसी यह बढ़ती जाती है, किन्तु वृद्धावस्था में वह चौगुनी हो जाती है। यह तृष्णारूपी रोग जीवन को नष्ट भ्रष्ट कर देता है। जो मनुष्य इस तृष्णा को छोड़ देते हैं वही सुख के भागी होते हैं— वे ही सुख पा सकते हैं। वास्तव में तृष्णा ही एक मनुष्य के लिए बड़ा भारी बन्धन है। इसीसे छूटने का नाम मुक्ति है। इसी तृष्णा को लोभ और काम शास्त्रों में बतलाया गया है—इसीसे लोभ और कामों की उत्पत्ति हुआ करती है। लोभ और काम ये दो काम ही तृष्णा के हैं। यही तृष्णा सब पापों का मूल कारण है।

ब्राह्मण कहता है कि हे राजा सेनजित्, इस तृष्णा के विषय में पिङ्गला वेश्या से कही हुई कुछ कहावतें सुनी जाती हैं। जिस तरह वह पिङ्गला बुरे समय में भी सनातन धर्म को प्राप्त होगई। वह कहावत इस तरह है—

एक बार वह पिङ्गला वेश्या किसी साङ्केतिक स्थान में आकर उपपति के मिलने की आशा में बैठी थी। परन्तु दोनों का संकेत हो जाने पर भी पिङ्गला का उपपति वहाँ न आया। जिसके प्राप्त होने की बड़ी चाहना थी उस उपपति के न मिलने पर पिङ्गला बड़ी दुखी हुई। फिर अपने मन में विचार कर पिङ्गला ने अपनी बुद्धि को शान्त किया।

जिस प्रकार दुःख सुख का कारण होता है—दुःख के बाद सुख मिला करता है—वैसे ही कभी कभी अधर्म या बुरा व्यवहार भी धर्म और पुण्य का कारण बन आता है। मनुष्य को जब बुरा काम करते करते उन बुरे कामों के कारण उसको कई बार दुःख मिल जाता है, उन कर्मों से सुख न मिल कर बार बार दुःख ही मिला करता है तब यह समझ जाता है कि बुरे कर्मों का फल भी बुरा ही हुआ करता है, सुख नहीं मिलता। तब वह उन बुरे कर्मों से ग्लानि करने लगता है। वह ऐसी ग्लानि कर लेता है कि फिर उस दुष्कर्म की ओर कभी देखता भी नहीं, और पुण्य कर्मों में ही—अच्छे अच्छे कर्मों में ही—अपनी रुचि करने लगता है जैसा कि पिङ्गला ने किया था।

पिङ्गला बोली:—मैं, उन्मत्त बन कर, कभी उन्मत्त न होने वाले अपने सनातन कान्त—प्यारे-पति के पास बहुत काल तक रही, बसी। परन्तु मैं ने अच्छे रमण-पति (रक्षक) को पास में रहते हुए भी पहले से न जान पाया। अब मैं इस शरीर रूप घर को बन्द करलूँगी जिसमें एक आशा या तृष्णा रूप एक खम्भ है। और जिसमें—नाक, कान, आँख, मुँह आदि इन्द्रियाँ नौ दर्वाजे हैं।

अब मैं ऐसी नहीं रही कि संसार के किसी भी मनुष्य को अपना पति समझूँ। अब मैं अकाम बन गई। अब मुझे काम-वासना कभी न सतावेगी। और अब मुझे नरक में पहुँचाने वाले ही नहीं किन्तु साक्षात् नरक रूप

बुरे मनुष्य—व्यभिचारी—कभी न ठग सकेंगे। अब मैं अज्ञान रूपी नींद से उठ खड़ी हुई। अब मैं जाग रही हूँ।

प्रारब्ध या पूर्व जन्म के कर्मानुसार कभी कभी अनर्थ में भी अर्थ हो जाता है—बुरा काम करते हुए भी अच्छी बात सूझ पड़ती है। अब मैंने बेहोशी की नाव से उठ कर जान लिया कि मेरा स्वरूप शरीर नहीं है किन्तु मेरा रूप आत्मा है। यह आत्मा आकार आदि से रहित है। इस प्रकार ज्ञान हो जाने से मैं अब जितेन्द्रिय हो गई हूँ। जब मैंने ठीक ठीक बात जान ली तब से मैंने अपनी इन्द्रियों को अपने वश में कर लिया है।

आशा-रहित मनुष्य सदा सुखपूर्वक सोया करता है। इसीलिए नैराश्य होना—आशा का न रखना—परम सुख है। पिङ्गला आशा को निराश करके—आशा का अभाव करके सुखपूर्वक सोई थी—सुख को प्राप्त हुई थी।

मनुष्य के लिए आशा-तृष्णा ही दुर्जय शत्रु है—इस तृष्णा को कोई कोई ही महात्मा जीत पाता है। यदि इस तृष्णा का मनुष्य अपने वश में कर लेवे तो उसके पास आने वाली असंख्य विपत्तियाँ नष्ट हो जावें। यह आशा ही मनुष्य को कर्त्तव्य कार्य से डिगाने वाली है। इसके वशीभूत होते ही ब्रह्मज्ञान, आत्मज्ञान, तत्त्वज्ञान, परमार्थ प्राप्ति आदि कल्याण के मार्ग प्राप्त होने में फिर कुछ भी देरी नहीं होती। इसलिए मुमुक्षु पुरुष को—सुख चाहनेवाले को—

इस तृष्णा—कामना—को धीरे धीरे अवश्य कम करना चाहिए।

भीष्मजी राजा युधिष्ठिर से कहते हैं:—हे युधिष्ठिर, उस ब्राह्मण के ऊपर कहे हुए पथ्य और भी युक्तियुक्त—यथार्थ वचन सुन कर राजा सेनजित् ध्यान में आया और प्रसन्न हुआ। प्रसन्नतापूर्वक वह सुखी हो गया। उसको यथार्थ मार्ग मिल जाने से बड़ा आनन्द मिला।

शम्पाक-गीता

एक दिन महाराज युधिष्ठिर भीष्मजी से पूछने लगे कि—हे पितामह, इस संसार में धनवान् और निर्धन मनुष्य किस तरह स्वतन्त्र होकर बर्त्ताव करते हैं और उनको सुख और दुःख की प्राप्ति किस तरह की कैसी होती है, यह समझा कर मुझे बतलाइए।

भीष्मजी ने राजा युधिष्ठिर से कहा कि—

हे राजन्, जो आपने पूछा है इस विषय में एक पुराना इतिहास कहता हूँ जिसको शान्तात्मा परम वैराग्यवान् शम्पाक ब्राह्मण ने मुझ से कहा था। वह इतिहास इस तरह है:—

जिसकी स्त्री दुष्टा थी, फटे-पुराने जो कपड़े पहने हुए था, और भूख से जो अत्यन्त दुखी हो रहा था, इस तरह के एक त्यागी ब्राह्मण शम्पाक ने मुझ से पहले कहा था कि—हे भीष्म, इस संसार में जन्म से लेकर पैदा हुए मनुष्य को अनेक तरह के सुख और दुःख घेरा करते हैं।

इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह सुख और दुखों में से एक के भी अधीन न होवे—अर्थात् सुख मिलने पर न तो अधिक खुश होवे और न दुख मिलने पर अत्यन्त दुखी ही हो—उसे सुख दुख में घबराना नहीं चाहिए।

प्रत्येक मनुष्य को सुख और दुख पारापारी से मिला ही करते हैं। पर सुखी वही मनुष्य कहा जा सकता है—उसी मनुष्य को सुख का अनुभव हो सकता है—जो सुख का साधन प्राप्त होने पर अपने को अत्यन्त सुखी नहीं मान लेता और दुख का साधन मिलने पर जो अधीर नहीं हो जाता किन्तु उस दुख को दूर करने के लिए धैर्य-पूर्वक उपाय करता है।

फिर उस शम्पाक ब्राह्मण ने मुझ से कहा कि—हे भीष्म, तुम जो सुख प्राप्त करने के लिए बहुत सी आशायें रखते हो यह तुम्हारे कल्याण का मार्ग नहीं है—इन आशाओं के रखने वाले का कल्याण नहीं हो सकता। हे भीष्म, अगर तुम यह कहो कि 'हमतो केवल राज्य आदि का बोझा ले चलते हैं' यह कहना भी ठीक नहीं, यह युक्तियुक्त नहीं। क्योंकि अकाम मनुष्य बोझा नहीं उठाता—जिसको सांसारिक किसी तरह की कामना नहीं है वह किसी भार को नहीं उठाता—वह अपने सिर भार नहीं रखना चाहता।

यदि तुम सांसारिक धनादि पदार्थों को त्याग दोगे तो सुख का स्वाद चक्खोगे। संसार की धनादि चीजों

का त्याग करने वाला ही मनुष्य सुख की नींद सोया करता और उठा करता है, त्यागी मनुष्य को ही सच्चा सुख मिलता है।

संसार में एक मात्र धन की ओर से त्याग-बुद्धि कर लेना ही दुखों से रहित होना है और कल्याण-स्वरूप चलने योग्य मार्ग है। इस मार्ग में कोई शत्रु नहीं है। यह मार्ग सुलभ और दुर्लभ दोनों तरह का है। यह मार्ग आसानी से भी मिल सकता है और बड़े बड़े उपाय करने पर भी नहीं मिल सकता।

जो सच्चे अन्तःकरण से धन का त्याग करने वाला और योग्य है उस मनुष्य के समान तीनों लोकों में कोई दूसरा मनुष्य नहीं है। इस बात को मैं अच्छी तरह जानता हूँ। उस शम्पाक ने फिर जोर देकर इसी विषय में कहा कि—

मैंने धनादि का त्याग और राज्य को तुला (तराजू) में रख कर तौला है। उसमें राज्य से भारी तथा अधिक गुण वाला दारिद्र्य—धनैश्वर्यादि का त्याग—हुआ है।

त्याग और राज्य में बड़ा फर्क यह है कि धनी मनुष्य हमेशा घबराया हुआ सा रहता है। उस मनुष्य की ऐसी दशा रहती है जिस तरह मरने वाले मनुष्यादि की होती है।

और जो मनुष्य धनादि पदार्थों से विरक्त होता है, जिसको धनादि पदार्थों की आशा नहीं रहती उसको

आग किसी तरह का नुकसान नहीं पहुँचा सकती। उस को मृत्यु और डाकू आदि भी नहीं सताते।

जो मनुष्य, संसार की सब चीजों को छोड़ कर अपनी इच्छानुसार घूमता फिरता है, बिना बिछौने के जमीन पर सोता है, अपनी भुजाओं का तकिया बनाता है और जो शान्ति की शरण लेता है देवता भी उसकी प्रशंसा करते हैं।

संसार में धन आदि सांसारिक सामानों की इच्छा रखने वाले मनुष्य सदा से होते आये हैं और होते रहेंगे। धन की चाहना करने वाले मनुष्य उसी मनुष्य से धन लेने की चेष्टा करते हैं या किसी प्रकार से धन छीन लेने का दाव देखते हैं-जिसके पास धनादि सामान होते हैं। कोई तो चोरी करके, कोई ठग कर, कोई खुशामद से, कोई लूट कर उस धनी मनुष्य से धन लेना चाहता है, और यथाशक्ति ले भी लेता है। जिस तरह किसी को अपने खाये जाने का या मारे जाने का भय लगा हो तो उसको सुख नहीं मिलता। ठीक इसी तरह धनी मनुष्यों को प्रति क्षण भय लगा रहता है, उनको ठीक ठीक सुख किसी समय नहीं मिलता। निर्धन होने पर मनुष्य को सिर्फ यही दुख होता है कि क्या करे हमारे पास धन नहीं, किस तरह धन इकट्ठा करें ? कहाँ से लावें ? इत्यादि। अगर उन निर्धनी मनुष्यों को धन प्राप्ति की इच्छा न रहे, वे अपनी तृष्णा को शान्त कर देवें तो उनको परम सन्तोष

बाक़ी सब तरह का घमंड आकर मनुष्य को घेर लेता है। इस धन के घमंड से मनुष्य अपने करने योग्य सभी कामों को तिलाञ्जलि दे बैठता है। अच्छे कामों की ओर से वह इस तरह मुँह फेर लेता है कि मानो उसे किसी तरह की ख़बर ही नहीं है। उसको धर्म अधर्म का कुछ भी ख़याल नहीं रहता। प्रयोजन यह कि धन मनुष्य को अधोगति में पहुँचाने का एक बड़ा कारण बन जाता है।

जो मनुष्य संसार के भोगों में अधिक लिप्त हो जाता है—जो यह समझता है कि संसार के भोग भोगे जाओ, आगे जो कुछ होगा देखा जायगा—वह अपने पूर्वज पिता आदि के इकट्ठा किये हुए धन आदि पदार्थों को व्यर्थ के कामों में ख़र्च कर डालता है। वह जुआ खेलना, शराब पीना आदि बुरे कामों में जब सब धन को नष्ट कर देता है तब वह इच्छा करता है कि दूसरों के धनादि पदार्थ मेरे पास आ जायें तो अच्छा हो। यहाँ तक कि वह दूसरों की धन-दौलत छीनने के लिए या चोरी करने के लिए तैयार हो जाता है। जब वह ऐसे बुरे कामों में लग जाता है तब उस राज नियम को तोड़ने वाले एवं पराया माल मारने वाले उस नीच मनुष्य के पीछे राज-कर्मचारी लोग, सज़ा देने को इस तरह लग जाते हैं—पीछे पड़ जाते हैं—जिस तरह शिकारी बाणों से मारने के लिए हरिण के पीछे लगे ही चले जाते हैं।

इसी तरह नाना प्रकार के काम क्रोध लोभादि बुरे व्यसनों से पैदा होने वाले अनेक दुख मनुष्य के पीछे लग

आते हैं। उनको शास्त्रों में तीन तरह का बतलाया गया है १—आधिभौतिक २— आधिदैविक ३—आध्यात्मिक। ये तीन तरह के दुःख माने गये हैं। इन बड़े बड़े दुःखों को दूर करने के लिए मनुष्य को अपनी बुद्धि से विचार कर बड़ा प्रयत्न करना चाहिए। मनुष्य, सदा नित्य और अनित्य का विचार करता हुआ—कौन हमेशा रहने वाला है, कौन नहीं, क्या क्या चीज़ें नित्य बनी रहेंगी कौनसी चीज़ें अपना समय आजाने पर नष्ट हो जावेंगी—यह विचार रखता हुआ मनुष्य लोक के व्यवहार की कुछ परवा न करे।

धन आदि सांसारिक भोगों के होने पर या न होने पर आने वाले दुःखों की दवा वही मनुष्य कर सकता है जो सचाई का और झूठ का विचार कर सकता है, और कोई नहीं। जिस मनुष्य में स्वयं सत् और असत् के विचार करने की बुद्धि नहीं है उसके दुःख को दूर करने के लिए संसार में कोई दवा नहीं।

यह सब ऊपर लिखा हुआ हाल भीष्मजी शम्पाक ब्राह्मण से सुन चुके थे। यह सब हाल राजा युधिष्ठिर को सुना देने के बाद—भीष्मजी कहते हैं कि हे राजन्, वह ब्राह्मण मुझ से बोला कि हे भीष्म, संसार की चीज़ों का बिना त्याग किये सुख नहीं मिल सकता। सांसारिक सामानों का बिना त्याग किये मुक्ति नहीं मिल सकती और बिना त्याग के कोई निर्भय हो कर नहीं सो सकता।

इस लिए संसार के सब पदार्थों को तुम छोड़ कर सुखी बन जाओ। पहले हस्तिनापुर में मुझ से यह सब कथन दाम्पाक नाम ब्राह्मण ने किया था इसलिए मुझे त्याग करना परम आवश्यक है और स्वीकृत है।

पुत्र-गीता

एक दिन युधिष्ठिरजी महाराज भीष्मजी से पूँछने लगे कि "हे पितामह ! इस दौड़ते हुए और सबका नाश करने वाले काल को आता हुआ जान कर मनुष्य को क्या करना चाहिए ? उसे अपने कल्याण का मार्ग कौनसा ढूँढ़ना चाहिए ? ऐसा कौनसा उपाय है जिसके अनुसार चलने से मनुष्य अपना कल्याण कर सकता है ? यह आप मुझे अच्छी तरह समझा कर बतलाइए"। राजा युधिष्ठिर के इस प्रश्न का उत्तर भीष्मजी ने दिया कि "हे कुन्ती के पुत्र युधिष्ठिर ! तुमने जो मुझ से प्रश्न किया है, तुम जो कुछ मुझसे मालूम करना चाहते हो इसी के विषय में "पिता पुत्र का संवाद" रूप एक पुराना इतिहास कहा जाता है। इसको तुम ध्यान देकर सुनो और समझो"। यह इतिहास इस तरह है—

किसी एक वेद-पाठी ब्राह्मण के एक पुत्र का नाम मेधावी था। वह बड़ा तीव्र-बुद्धि था। उसके विचार बड़े ऊँचे

एव पवित्र थे। यह मोक्ष और धर्म के तत्त्व के समझने में बड़ा होशियार तथा संसार की असारता को यथार्थ रूप से जानने वाला था, अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इन चारों में से काम और धन में वह आसक्त न था किन्तु बाल-ब्रह्मचारी था। वह मेधावी एक समय अपने पिता से कहने लगा कि "हे पूज्य पिताजी! संसारी मनुष्यों की उम्र जल्दी जल्दी बीत रही है, इस बात को धीर पुरुष जानता हुआ क्या करे? उसे क्या करना उचित है? हे पिताजी! यह बात मुझे अच्छी तरह समझा कर बतला इए जिससे मैं धर्म ही करूँ"।

इस प्रश्न से बाल-ब्रह्मचारी का मतलब यह है कि एक दिन प्रत्येक मनुष्य की मृत्यु का होना अवश्यम्भावी है। उस मृत्यु की यात्रा के लिए मनुष्य को पहले से ही बड़ी तैयारी करनी चाहिए जिस प्रकार कि संसार में जब कहीं किसी पुरुष का जाना होता है तब वह पहले से अच्छी तरह तैयारी किया करता है। मरने के बाद शरीर आदि प्राकृतिक वस्तु कोई साथ न आवेगी, किन्तु केवल अपने किये हुए अच्छे या बुरे काम ही साथ जावेंगे। पुत्र के प्रश्न का उत्तर पिता ने इस तरह दिया कि "हे पुत्र! मनुष्य को चाहिए कि पहले अच्छी तरह ब्रह्मचर्य आश्रम में रह कर वैदिक विद्या को पढ़े। जब विद्या पढ़ कर पूर्ण विद्वान् हो जावे तब पितरों को तारने के लिए, पितरों से उऋण होने के लिए, गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करे और सत्पुत्रों को पैदा करे। इस

गृहस्थ में रहता हुआ अग्न्याधान करके सोमयाग आदि बड़े बड़े यज्ञ करे। इसके बाद वन में चला आवे। यहाँ मुनि बनने के लिए बड़ी कोशिश करे अर्थात् वानप्रस्थी बन कर बड़े प्रयत्न से तप करे। इस प्रकार तीनों आश्रमों का काम पूरा कर लेने पर, ऋणों से छूट कर, मुक्ति को प्राप्त हो सकता है"।

मेधावी के पिता ने यह बीच दरजे के मनुष्यों के लिए कल्याण का मार्ग बतलाया है। मेधावी ने अपने पिता की यह शिक्षा सुन कर कहा कि "हे पिताजी! इस प्रकार नाना प्रकार के दुःखों से लोग रात दिन पीड़ित हो रहे हैं तथा अनेक प्रकार के आलस्य आदि विपत्तियों से घिरे हुए बीतते हैं और ये आपत्तियाँ कभी समाप्त होने वाली नहीं हैं किन्तु ये आपत्तियाँ बार बार आ आकर ऊपर गिरा करती हैं। ये सारी बातें आप जानते हुए भी, धीरज रखने वालों की तरह मुझ से क्या कहते हैं?" अपने पुत्र की ये बाते सुन कर पिता ने कहा कि "हे पुत्र! यह लोक अभ्याहत (मरा हुआ) किस प्रकार है? और किस से घिरा हुआ है? अमोघा—आप त्तियाँ कौन हैं जो आती आती हैं? हे पुत्र! तू इस प्रकार के वचन कह कर क्या मुझे डराना चाहता है?"

अपने पिता के वचन सुन कर पुत्र ने कहा कि "हे पिताजी! यह लोक—संसार—मृत्यु से मरा हुआ है तथा बुढ़ापे से घिरा हुआ है। आने आने वाली ये बातें

कहलाती हैं। अब मैं इस बात को अच्छी तरह जानता हूँ कि मृत्यु बराबर प्राणियों को मारती ही जाती है किन्तु यदि कोई यह चाहे कि मैं अभी न मरूँ तो मृत्यु कुछ भी देर ठहरती नहीं, खड़ी नहीं रहती, वह उसके लिए ज़रा भी इन्तज़ार नहीं करती। मैं इस प्रकार मृत्यु को शीघ्र जानता हुआ मौत की इन्तज़ारी क्यों करूँ?"।

पुत्र पिता से फिर कहने लगा कि "हे पिताजी! एक एक रात के बीतने पर थोड़ी थोड़ी उम्र रोज़ रोज़ कम होती जाती है। इसी तरह दिन भी उम्र को ख़तम करने वाला है। यह बात बुद्धिमान् मनुष्य को जान लेनी चाहिए। जिस प्रकार अथाह जल में मच्छ सुख नहीं पा सकता, इसी तरह इस अगाध संसार में कौन मनुष्य सुख पा सकता है? क्योंकि मनुष्य जिस बात की इच्छा करता है वह बात पूरी नहीं होने पाती और झट मृत्यु आकर पकड़ ले जाती है। फूलों को बटोरते हुए पुरुष की तरह संसार के किसी काम में लगे हुए और उस काम में तल्लीन होने के कारण दूसरी बातों को भूले हुए पुरुष को मौत लेकर इस प्रकार चल देती है जिस प्रकार बकरे को भेड़िया लेकर चला जाता है। हे पिताजी! आप आज ही कल्याणकारी कामों को कीजिए। आपका यह समय व्यर्थ न चला जाये क्योंकि कामों के पूरा न होते ही मृत्यु मनुष्यों को खींच ले जाती है। मनुष्य को चाहिए कि वह कल के काम को आज और दोपहर से पीछे के

करने योग्य काम को दोपहर से पहले कर डाले, क्योंकि 'मनुष्यों के काम पूरे हुए या नहीं' इस बात की मृत्यु इन्तज़ारी कभी नहीं करती। कौन जानता है कि आज किसकी मृत्यु होगी। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि कुछ समर्थ होते ही धर्म के काम करने लगे किन्तु यह कभी न सोचे कि बूढ़े होंगे तब धर्म-कार्य्य कर डालेंगे, अभी इस जवानी उम्र में तो संसार के आनन्द भोग लें। क्योंकि जीवन क्षणभङ्गुर है, थोड़ी सी देर में नाश होने वाला है। जो धर्म करता है उसकी इस संसार में बड़ी बड़ाई होती है और मरने पर परलोक में उसको अनन्त सुख मिलता है"।

इन वचनों के कहने से मेधावी के कहने का तात्पर्य्य यह है कि मनुष्य को संसार की अनित्यता का विचार सदा रखना चाहिए। यह संसार-चक्र चलायमान है, इस का सदा ख़याल रखना चाहिए। जो इस तरह का ख़याल रखता है तथा संसार के प्राणियों को मरता देख कर जो मनुष्य बार बार शिक्षा ग्रहण करता है, और ममता रूप नशे को पीकर अपनी सुध बुध नहीं भूल जाता किन्तु होशियार रहता हुआ अपने असली करने लायक़ काम से डिगता नहीं, चलायमान नहीं होता तो वह कल्याण का भागी अवश्य हो सकता है।

मेधावी ने कहा कि "ये समझ मनुष्य अपने पुत्र और स्त्री आदि के लिए करने योग्य और न करने योग्य काम

करता और अपने बाल-बच्चे और स्त्री आदि का पालन-पोषण किया करता है। बाल बच्चे, स्त्री और जानवर वगैरह के कामों में फँसे हुए उस मनुष्य को मौत इस तरह उठा कर लेजाती है जिस तरह सोते हुए हिरन को बाघिनी ले जाय। मन की कामनाओं को बटोरते हुए तथा कामों से तृप्त न हुए अज्ञानी मनुष्य को मृत्यु इस प्रकार उठा ले जाती है जिस प्रकार व्याघ्र किसी जन्तु को उठा ले जाये। 'यह काम हो गया, यह काम करना बाक़ी है और यह दूसरा काम बीच में पड़ा हुआ पूरा करना है' इस प्रकार आशा रूप सुख से युक्त हुए मनुष्य को मृत्यु अपने वश में कर लेती है"।

तात्पर्य यह कि जो मनुष्य हर समय सचेत रहता है और अपने कल्याण के लिए भी कुछ जप, तप परोपकार और दान आदि करता जाता है, उसकी भी मृत्यु अवश्य होगी, पर धर्म को इकट्ठा कर लेने से उसके पास अच्छे साधनों का बल हो जाता है इसलिए वह मरने के समय घबराता नहीं तथा मृत्यु का दुःख भी उसको अधिक नहीं सताता।

फिर मेधावी ने कहा कि —"जिस मनुष्य को अपने किये हुए कर्मों का फल अभी तक नहीं मिला एवं जो खेती, दूकान और घर आदि के कामों की फँसावट में भूला हुआ है ऐसे मनुष्य को मृत्यु उठा कर चल देती है। दुर्बल हो या बलवान्, मारने वाला बहादुर, साहसी हो

या करने वाला हो पर मृत्यु किसी को छोड़ती नहीं, किन्तु दुर्बल आदि सब प्राणियों को, अपनी इच्छाओं को या धनादि चीज़ों को पूरा प्राप्त कर लेने से पहले ही मृत्यु उठा ले जाती है। "हे पिताजी! जब इस शरीर में मृत्यु बुढ़ापा आदि नाना प्रकार के रोग, और बहुत से कारणों वाले अनेक दुःख रहते हैं, यह शरीर रोगों और दुःखों का घर है फिर आप बेफ़िक्र क्यों बैठे हैं? सावधान हो जाइए। न जाने मृत्यु आदि कोई वैरी किस वक्त आकर घेर ले। पैदा होते ही मनुष्य के पास मारने के लिए मृत्यु तथा बुढ़ापा आ घेरते हैं और मौक़ा पाकर ये दोनों अपना काम कर डालते हैं। इस मृत्यु और बुढ़ापे ने सब जड़ और चेतन पदार्थों को घेर रक्खा है। गाँव का रहना—मनुष्य-समुदाय में रहना—और गाँव की चीज़ों से अधिक प्रेम करना ये दो बातें ही मृत्यु के मुख्य कारण हैं। वेदों की राय है कि वन में तप आदि करने से मृत्यु दूर भाग जाती है। शुद्ध एकान्त स्थान, निर्जन वन, जहाँ पास में कोई मनुष्य न हो, यह देव-स्थान माना गया है। गाँव में रहना और गाँव की चीज़ों में तन्मयता—लवलीनता—से प्रेम रखना ये दोनों बातें मानों संसार में बाँधने के लिए रस्सियाँ हैं। इन रस्सियों को पुण्यात्मा तथा धर्मशील ही मनुष्य काट सकते हैं; पापी मनुष्य कभी नहीं काट सकते"।

इन बातों से मेधावी के कहने का तात्पर्य यह है कि अगर मनुष्य की बुद्धि और विचार ठीक ठीक बने

तथा ये बातें रहने के लिए जिसके हृदय में जगह पा जावें वह मनुष्य संसार की प्यारी चीज़ों में अधिक आसक्त नहीं होता और अगाध संसाररूपी सागर की तरंगों में पड़ा हुआ गोता नहीं खाया करता —भूला नहीं रहता। मूल में पड़ा रहना अविद्या और मृत्यु है तथा शरीरों का अनित्य—सदा न रहने वाले—समझना मथा ज्ञान एवं विद्या है जा मोक्ष का साधन बतलाया गया है।

"जा मनुष्य मन, वाणी, शरीर और दूसरों की बुराई करने आदि कारणों से किसी प्राणी की हिंसा नहीं करता या किसी दूसरे मनुष्य की सहायता से किसी का नहीं सताता वह जीवन, मरण के प्रवाह में बहाने वाले कर्मों से कभी नहीं बँधता। सत्य के सिवा दूसरा कोई साधन ऐसा नहीं है जा सामने आती हुई मृत्यु की सेना का रोक सके। एक सत्य ही एसा साधन है, सत्य ही में एसी शक्ति है जा मृत्यु के अपने खाने की चीज़ बना लेता है। सत्य अपरिणामी माना गया है। उसका परिणाम नहीं है। सत्य में अमृत ठहरा हुआ है। इसलिए मनुष्य का उचित है कि सत्य व्रत करे, सत्य-योग का अभ्यास करता रहे तथा सत्य शास्त्रों का पठन पाठन करता हुआ एवं जितेन्द्रिय होकर सत्य से ही मृत्यु का जीत ले। इस मनुष्य-शरीर में अमृत और मृत्यु दोनों ठहरे हुए हैं। अज्ञान से मृत्यु और सत्य अर्थात् ज्ञान से अमृत प्राप्त होता है"।

मनुष्य को समझना चाहिए कि किसी जीवधारी के किसी प्रकार से सताना या दुःख पहुँचाना सब बुराइयों

तथा पापों का मूल कारण है और किसी प्राणी को किसी प्रकार से भी न सताना एवं दुःख न पहुँचाना, उन पर सदा दया रखना सब धर्म और पुण्यों का मूल कारण है। हिंसा करने से बंधन का भय होता है और दया या अहिंसा का सेवन करने से निर्भयता होती है जो मुक्ति का हेतु बतलाई गई है।

"इसलिए मैं हिंसा न करने वाला, सत्य को बर्ताव में लाने वाला, काम और क्रोध को छोड़ कर, सुख और दुःख को एकसा मानता हुआ, आनन्दपूर्वक देवों की तरह मृत्यु को छोड़ दूँगा। मैं शान्ति रूप यज्ञ में मन लगाऊँगा, और मैं ब्रह्म-यज्ञ करने में लग जाऊँगा। उस वाणी का रस उसके कारण में यज्ञ-होम करना हुआ मानूँगा कि मानो मैं देवयज्ञ ही कर रहा हूँ। मेरे समान समझने वाला मनुष्य जिन जिन यज्ञों में पशु हिंसा की जाती है ऐसे हिंसा करने वाले यज्ञों से यजन करने योग्य नहीं, सच्चे मतलब को समझने वाला कोई मनुष्य यज्ञों में हिंसा नहीं किया करता। क्योंकि हिंसा बढ़ाने वाले तथा थोड़ा फल देने वाले यज्ञों को, जो मनुष्य बुद्धिमान् हैं, एव धर्म की ओर झुके हुए हैं और उत्तम धर्म-कार्यों में निष्ठा रखते हैं ऐसे मनुष्य पिशाच और राक्षस बन कर पैशाची और राक्षसी काम को कभी नहीं कर सकते।

' जो मनुष्य अपने मन और वाणी को अच्छी तरह, अपने रखता है तथा तप, दान और दाग जा ठी

ठीक करना जानता है और यथाशक्ति करता है वही मनुष्य सब से परे परब्रह्म परमात्मा को या मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। विद्या के समान दूसरा कोई नेत्र नहीं है, सत्य के बराबर दूसरा तप नहीं है, राग (किसी चीज़ में अधिक लवलीन होना) के बराबर कोई दुःख नहीं है और त्याग (सांसारिक पदार्थों में अधिक लवलीन न होने) के बराबर कोई सुख नहीं। मेरा आत्मा अनादि है इसलिए यह किसी से पैदा नहीं हुआ, तथा यह आत्मा अपने ही रूप में ठहरा हुआ है। यह आत्मा किसी दूसरे जीव को पैदा नहीं करता इसलिए मैं अपने ही रूप में ठहरूँगा, मुझ को सांसारिक प्रजा नहीं मार सकती"।

मधायी के कहने का प्रयोजन यह है कि संसार में रहते हुए मनुष्य को अपने मन और वाणी को अच्छी तरह वश में रखना चाहिए। ये मन और वाणी ही वश में न होने पर मनुष्य को अत्यन्त दुःख देने वाले होते हैं और अगर ये वश में हुए तो सुख की सीमा नहीं रहती। चित्त को सावधान रखना, एवं चित्त का एकाग्र होने का काम देता है। यही कल्याण और मुक्ति का मार्ग बतलाया गया है।

संसार में कुटुम्बियों में भी रह कर मनुष्य तप और त्याग (वैराग्य) कुछ कुछ कर सकता है और अवश्य करना चाहिए।

विद्या दृग् को कहते हैं। मनुस्मृति में कहा गया है कि दिमाग, क्षेत्र और मनुष्यों का देह ही सनातन नेत्र है। इस-

लिए सच्चे रास्ते पर ले जाने वाली वैदिक विद्या ही है। वैदिक विद्या का जानना एवं वैदिक धर्म-कर्मों का करना मनुष्य का परम कर्तव्य है। यही कल्याण—परम सुख—को देने वाली है।

उस मेधावी ने और भी अपने पिता से कहा कि "हे ब्राह्मण पिताजी! ब्राह्मण के लिए दूसरा ऐसा कोई धन नहीं है जैसा कि ये ८ बातें हैं।

१—एकता—सबके साथ मेल रखना। २—समता—सब प्राणियों का उसी एक परमात्मा की सन्तान समझ कर उनको एक दृष्टि से देखना। ३—सत्यता—सदा सच्चाई को काम में लाना। ४—शील—अपना शील-स्वभाव अच्छा रखना। ५—धर्म—सदा धर्मसंबन्धी काम करना। ६—तप—शक्ति भर पूजा-पाठ तप आदि करना। ७—सब प्राणियों के साथ कोमल बर्ताव करना। और ८—संसारी कामों में अधिक लीन न होना। ये ८ धन उत्तम हैं।

हे पिताजी! जब आपका मरना, इस शरीर को छोड़ना, निश्चित ही है तब आपको धन, बान्धव और स्त्री से कोई मतलब नहीं। जिस आत्मा को अज्ञानी मनुष्य जान नहीं सकता उस आत्मा को आप जानिए, उसको खोजिए। थोड़ी देर सोचिए तो सही कि आपके पितामह और पिता आदि कहाँ गये!!

देखिए, पुराने जमाने में कैसे अच्छे संस्कारी पुत्र हुआ करते थे। मेधावी ने कैसा अच्छा, शास्त्र के अनुसार अपने

पिता को समझाया और सच्चे कल्याण का मार्ग बतलाया। आर्यावर्त देश में अब ऐसे सुपुत्र उत्पन्न हों तो इस देश का बहुत शीघ्र कल्याण हो सकता है। ऐसे सुयोग्य पुत्र आज कल कहीं देखने में नहीं आते।

भीष्मजी जब राजा युधिष्ठिर को यह 'पिता-पुत्र संवाद' की बातें सुना चुके तब उन्होंने कहा कि "हे राजा युधिष्ठिर! जिस प्रकार मेधावी पुत्र की बातें सुन कर उसके पिता ने बर्त्ताव किया था उसी तरह से आप भी सत्य और धर्म में लीन हो कर बर्त्ताव कीजिए। यह कल्याण का मार्ग है, ऐसा बर्त्ताव करने से मनुष्य का अवश्य कल्याण हो सकता है। इससे बढ़ कर कल्याण प्राप्त करने के लिए दूसरा उपाय नहीं है"।

मङ्कि-गीता

एक दिन युधिष्ठिरजी ने भीष्म पितामहजी से पूछा कि "हे पितामह! यदि मनुष्य धन पाने की इच्छा से बहुत से कामों को आरम्भ कर देवे और फिर भी धन न मिले तो बतलाइए कि उस धन की इच्छा करने वाले पुरुष को किस काम के करने से सुख या शान्ति मिल सकती है?

भीष्मजी महाराज ने राजा युधिष्ठिर के प्रश्न का उत्तर इस तरह दिया था कि "हे भरत कुल में उत्पन्न हुए युधिष्ठिर! जिस मनुष्य में ये पाँच गुण होते हैं वह अवश्य सुखी रहता है। ये पाँच गुण ये हैं—१—सब प्राणियों में समता रखना अर्थात् किसी मनुष्य को शत्रु समझना, किसी को मित्र समझना ठीक नहीं है किन्तु सब प्राणियों के साथ एकसा बर्ताव रखना सुखदायी होता है। २

मन में सदा शान्ति रखना और कभी क्रोध न करना। ३—सत्य बोलना, अर्थात् जैसा विचार मन में हो वैसा ही वाणी से जाहिर करना और जैसा वाणी से जाहिर किया हो वैसा ही बर्त्ताव में लाना सत्य बोलना कहाता है। ४—वैराग्य अर्थात् सांसारिक विषयों से उदासीन रहना, उन में अधिक लीन् न होना। और ५—सदा नये नये कामों को शुरू न करना, किन्तु जिस काम को शुरू किया हो उसको पूरा ही कर डाले। जब तक वह काम पूरा न हो जावे तब तक दूसरा काम न छेड़े, नहीं तो दोनों ही अधूरे रह जावेंगे। बूढ़े और ज्ञानी पुरुषों ने इन्हीं पांच गुणों को शान्ति का पद—साधन—बतलाया है। इन्हीं पांच गुणों से स्वर्ग मिलता है, धर्म इकट्ठा होता है एव सब से उत्तम सुख मिलता है। इस विषय में वृद्ध मनुष्य इस पुराने इतिहास को कहा करते हैं, जो इतिहास परम वैराग्यवान् एव सांसारिक विषयों से उदासीन, परम विद्वान् मङ्कि नाम वाले मनुष्य ने कहा है। इसी से इसका नाम मङ्कि-गाथा है। इस गीता को आप ध्यान दे कर सुनिए और मनन कीजिए। वह गीता इस प्रकार है:—

पहले समय में मङ्कि नामक मनुष्य ने धन इकट्ठा करने की इच्छा से नाना प्रकार की चेष्टायें और कोशिशें कीं पर उसकी ये चेष्टायें और कोशिशें बार बार व्यर्थ गईं। उसने बहुत उपाय किये पर किसी उपाय से धन की प्राप्ति न हुई। तब मङ्कि ने अपने पास बचे हुए थोड़े धन से दो बछड़े (जिन बछड़ों ने अपनी गोमाताओं का दूध पीना छोड़

लिया था) ख़रीदे। मङ्कि एक दिन उन दोनों बछड़ों को जोट बना कर इधर उधर घुमाने के लिए घर से बाहर ले गया। रास्ते में एक ऊँट बैठा हुआ था। वे दोनों बछड़े घर से निकलते ही बड़े ज़ोर से दौड़े और रास्ते में बैठे हुए ऊँट के इधर उधर हो कर निकले। उन दोनों बछड़ों की रस्सी ऊँट के ऊपर आगई थी, ऊँट उन दोनों बछड़ों को उस तरह निकलता हुआ देख कर सहन न कर सका और अपनी गर्दन में आई हुई बछड़ों की जुड़ी रस्सी को, जिसमें वे दोनों ही बछड़े जुड़े हुए थे, लेकर एक साथ उठ कर खड़ा होगया। उससे उन दोनों बछड़ों को ऊपर उठा लिया और अपनी लम्बी गर्दन जल्दी से फैला दी। तब उस बलवान् ऊँट से उठाये हुए और मरते हुए अपने दोनों बछड़ों को देख कर मङ्कि ने कहा कि—

"चतुर मनुष्य भी बिना भाग्य के चाहे हुए धन को कभी नहीं प्राप्त कर सकता, चाहे वह श्रद्धावान् बन कर कितने ही उपाय क्यों न करे। मैंने आज तक कोई बुरा काम नहीं किया तथा उद्योग में भी अच्छी तरह लगा हुआ हूँ तो भी देखो अचानक प्रारब्ध-सम्बन्धी कैसी विपत्ति आ गई है। मेरे ये बछड़े उछल कूद कर भी कभी टेढ़े रास्ते पर नहीं जाया करते थे परन्तु आज आकाश मार्ग से जा रहे हैं। मेरे ये प्यारे बछड़े ऊँट की गर्दन में दो मणियों की तरह लटक रहे हैं। यह केवल भाग्य का ही फल है"।

यदि कोई मनुष्य जबरदस्ती पुरुषार्थ को ही प्रधान समझे या कहे तो सो भी नहीं हो सकता। यदि, कहीं कभी कभी पुरुषार्थ की भी प्रधानता दीख पड़ती है तो वहाँ पर भी खोज करने या विशेष विचार करने से अन्त में भाग्य की ही प्रधानता ठहरती है। इसलिए सुख की इच्छा करने वाला मनुष्य उदासीनता—वैराग्य—को ही धारण करे, सांसारिक विषयों में अधिक न फँसे, क्योंकि कुछ कुछ वैराग्य रखने वाला एवं सांसारिक विषयों की अधिक इच्छा न करने वाला और उनकी ओर से निराश सा हुआ मनुष्य सुखपूर्वक सोया करता है, उस मनुष्य को चारों ओर आनन्द ही आनन्द मालूम पड़ता है। उसको दुःख का कुछ भी विचार नहीं होता।

संसार के सब सामानों का त्याग करते हुए और जनक के घर से महा वन को समाधि लगाने के लिए जाते हुए शुकदेवजी महाराज ने बहुत ही अच्छा मत लगाया है। वह यह है कि—"इस संसार में जो मनुष्य अपने चाहे हुए सब कार्मो को पूरा कर लेवे और दूसरा जो मनुष्य सब कामनायें छोड़ देवे, तो इन दोनों में सब कामनायें छोड़ देने वाला बहुत अच्छा है, उसको बड़ा सुख मिलता है"।

भाग्य को प्रधान मानने के साथ ही साथ आस्तिक बुद्धि रखने की भी बड़ी जरूरत है। प्रत्येक मनुष्य को अपने किये हुए कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है,

इस प्रकार का विश्वास ही अच्छे अच्छे कामों को कराता एवं बुरे कामों से बचाता है। यदि भाग्य के अनुसार किसी मनुष्य को धनादि पदार्थों से कुछ सुख मिले भी तो उसके आगे पीछे या बीच बीच में दुःख मिलता ही रहता है। धनादि पदार्थों की अधिक चाहना रखने वाला कभी दुःखों से बच नहीं सकता। इसलिए संसारी पदार्थों से उदासीनता रखने में ही सुख है।

अनादि काल से अब तक कोई भी मनुष्य मनोरथों के पार नहीं गया। किसी की इच्छायें पूरी नहीं हुई। जब तक यह मनुष्य का शरीर जीता रहता है तब तक बराबर अज्ञानी मनुष्य की तृष्णा बढ़ती ही जाती है। हे काम, अब तू सब मनोरथ छोड़ दे और उदासीन होकर शान्त हो जा। हे काम, तू ने जब जब मनोरथ पूरा करने का इरादा किया तभी तभी मनोरथ पूरा न होने से तेरा अनादर हुआ और तू बार बार दाव हारा, पर तो भी तुझे मनोरथों से उदासीनता नहीं हुई। अगर तू मुझको नष्ट करना नहीं चाहता, अगर तू मेरे साथ रहने में प्रसन्न है तो हे धन की इच्छा करने वाले काम, मुझे लोभ में व्यर्थ न फँसा। हे काम, सैकड़ों बार इकट्ठा हुआ तेरा धन बार बार नष्ट होगया। हे मूर्ख, धन की इच्छा करने वाले लोभ, तू इस धन की आशा को कब छोड़ेगा?

मङ्कि ने और भी कहा कि हे काम, मेरी यह बड़ी मूर्खता है, मेरी यह बड़ी बे समझी है, जो मैं तेरा खिलौ

बना हुआ हूँ। मनुष्य को चाहिए कि वह भोगों की तृष्णा की जलती हुई आग को बुझाने के लिए दूसरों का सेवक कभी न बने। इस संसार में पहले और पिछले कोई भी मनुष्य मनोरथों के पार नहीं पहुँचे। मैंने संसार के सुख-भोगों के लिए जिन कामों को शुरू किया था उनको छोड़ कर होशियार होगया। अब मैं जागता हूँ। हे काम, निस्सं-देह तेरा हृदय वज्र के समान अत्यन्त कठोर है जो सैकड़ों अनर्थों से युक्त होकर भी सैकड़ों टुकड़े टुकड़े नहीं होजाता।

हे काम, मैं तुझको और तेरे प्यारे कामों को जानता हूँ। मैं तेरा प्रिय करता हुआ अपने अन्तःकरण में कभी सुख को प्राप्त नहीं हो सकता।

हे काम, मैं तेरी जड़ को जानता हूँ अर्थात् मुझे मालूम हुआ है कि तू संकल्प—इरादे—से पैदा होता है। इस समय से आगे मैं संकल्प ही न करूँगा। इसलिए तू समूल ही न रहेगा—जड़ से नष्ट हो जायगा।

धन प्राप्त करने के लिए जो जो उद्योग किये जाते हैं, कोशिशें की जाती हैं, उन में तो सिवा दुःख के सुख का लेश मात्र भी नहीं, बिलकुल सुख है ही नहीं।

जब धन मिल जाता है तब उसकी रक्षा आदि के लिए बहुत बड़ी चिन्तायें करनी पड़ती हैं कि कोई धन चुरा न ले जाये। और अगर रक्षा करने पर भी किसी तरह धन का

नाश हो गया, धन जाता रहा, तो धन के नाश में मृत्यु के समान दुःख होता है ।

धन पाने के लिए जो जो उद्योग किये जाते हैं उन उद्योगों से कभी धन मिल जाता है, कभी नहीं मिलता। पर उद्योग न करने पर तो धन का मिलना बड़ा कठिन है। मिलता ही नहीं। किसी पुरुष को बिना उद्योग करने पर भी अगर धन मिल जावे तो वह पूर्व कर्मानुसार संचित किया हुआ मिला समझना चाहिए। प्रायः ऐसा ही देखने में आता है कि बिना मेहनत किये धन मिलना मुश्किल है। धन के न होने पर गरीबी से बढ़ कर संसार में दूसरा कोई दुःख नहीं है, गरीबी ही सब से बड़ा दुःख है।

अगर मेहनत करने पर धन मिल जाता है तो उस धन के लाभ से मनुष्य सदा के लिए सन्तुष्ट नहीं हो जाता किन्तु जैसे जैसे धन मिलता जाता है वैसे वैसे तृष्णा और अधिक बढ़ती जाती है, मनुष्य धन की खोज में अधिक अधिक लगता जाता है।

मनुष्य को धन से घमण्ड हो जाता है। जिसके पास धन होता है उस पुरुष को, गरीब आदमी की अपेक्षा, थोड़ा या बहुत घमण्ड अवश्य होता है, घमंड से वह बच नहीं सकता। इसी लिए मेरा यह विलाप करना ही— रोना ही—कि 'मुझ को धन की तृष्णा ने बड़ा दुःख दिया' गंगा के जल की तरह मेरे लिए बड़ा स्वादिष्ट है, बड़ा

ही मीठा है। यही रोना, यही विलाप करना मुझ को इस असार संसार से पार लगावेगा।

इन्हीं कारणों से हे काम, अब मैं जाग गया। अब मुझे होश आगया। अब तू मुझ को छोड़।

मेरे इस प्रत्यक्ष शरीर में जो पृथिवी आदि भूतों का समुदाय जहां तहां से आ आ कर इकट्ठा हुआ है, वह समुदाय चाहे अपने अपने पृथिवी आदि कारण में भले ही जाकर मिल जावे या इसी शरीर में बना रहे अर्थात् चाहे यह शरीर आज ही मर जाये या जीता रह पर मुझे अब इसमें प्रीति नहीं रही। मैं अब इस पञ्चभूतों से बने हुए शरीर में प्रीति नहीं कर सकता। कारण यह कि इस मनुष्य-शरीर में इकट्ठे हुए पृथिवी आदि तत्त्वों में ही काम और लोभ आदि रहते हैं, जो सब इकट्ठे होकर शरीर का रूप बनने में उमहते हैं। जिस तरह भाँग आदि की पत्ती में नशा खूब भरा होता है उसी तरह पृथिवी आदि तत्त्वों में ही काम आदि भरे हुए हैं, अच्छी तरह से व्याप्त हैं। शरीर रूप बनने पर, आत्मा का मेल पाकर वे ही काम आदि प्रकट हो जाते हैं, मालूम होने लगते हैं। इस लिए मैं कामनाओं को छोड़ कर सत्य (जो अविनाशी है, सदा विद्यमान रहने वाला है, जो घट घट में व्याप्त है, वैसे परमात्मा का) ही शरण लेता हूँ। उसी परमात्मा के शरण में रहने से मुझे सच्चा सुख मिलेगा। उसी के शरण में मुझे शान्ति मिलेगी।

तात्पर्य्य यह कि कार्य्य की विकृत दशा में—काम की तब्दीली में—जिन जिन सांसारिक झगड़ों से कष्ट प्रकट होते हैं, दुःख मालूम होने लगते हैं वे कारण-दशा में—अपने असली कारण में—खुद ही दब जाते हैं। कार्य सब विकारी हैं, एक रूप में रहने वाले नहीं हैं, इसी लिए अनित्य और असत्य हैं। कारण तो अविकारी, नित्य रहने वाला और सत्य है। पृथिवी आदि तत्त्व शरीरों में आ आ कर अपने ही सारांश रूप सोने आदि धन को अपनी स्वाभाविक आकर्षण शक्ति से अपनी ओर खींचते तथा चाहते हैं। इसी लिए जब जीवात्मा शरीर का अभिमान—ममत्व—छोड़ देता है तब तृष्णा भी एक साथ छू-मन्तर हो जाती है। शरीर के साथ अधिक प्रेम करने से तृष्णा बढ़ती है। जब शरीर के साथ प्रेम नहीं रहा तब तृष्णा भी नहीं रही। तृष्णा में फँसा हुआ मनुष्य जन्म भर कभी सुख का अनुभव नहीं कर सकता, इसलिए धीरे धीरे तृष्णा का कम करना ही सुखदायी है।

फिर भक्ति ने विचार कर कहा कि—मैं अपने काम आदि के सहारे पर, शरीर में काम आदि शत्रुओं का पालन करने वाले पृथिवी आदि भूतों को देखता हूँ, जानता हूँ और मन में आत्मा को देखता हूँ कि भूतों से भिन्न, पृथिवी आदि के तत्त्वों के सिवा शरीर कोई चीज नहीं अर्थात् यह शरीर पृथिवी आदि तत्त्वों का समूह है। मैं यह भी जानता हूँ कि आत्मा के बिना मन का मनत्व कुछ नहीं

है। इस तरह जानता हुआ मैं योग करने में बुद्धि लगाऊँगा, वेदादि शास्त्रों में आस्तिकता—श्रद्धा—रक्खूँगा। और परब्रह्म परमात्मा में मन को लगाता हुआ, सांसारिक आसक्ति को बिल्कुल छोड़ दूँगा। सब झगड़ों से छुटकारा पाकर सब लोकों में विचरूँगा। जिससे हे काम, तू मुझको फिर दुःखों के बीच में न गिरा सकेगा, तब मुझको दुःख न दे सकेगा।

हे काम, जब मैं तुझे सब तरह से दबा दूँगा या हटा दूँगा तब तेरी दूसरी कोई चाल न चल सकेगी। फिर तू मुझ पर दुबारा आक्रमण न कर सकेगा।

हे काम, तू ही तृष्णा, शोक और थकावट से होने वाले दुःखों का उपादान कारण है। तेरी ही कृपा से तृष्णा आदि दुःख मुझे घेरे रहते थे।

मैं यह भी समझता हूँ कि धन का नाश हो जाना सब दुःखों से बड़ा दुःख है। क्योंकि धनहीन मनुष्य के भाई, बन्धु कुटुम्बी और मित्र आदि सभी अपमान करते हैं, एव धनी पुरुष का भी सैकड़ों बार अपमान हुआ करता है। इससे जानना चाहिए कि धन में आगे और पीछे बड़े दोष हैं, बड़ी बुराइयाँ हैं, धन के होने पर भी और न होने पर भी, दोनों ही तरह दुःख ही दुःख है। धन में जो कुछ सुख की मात्रा है भी, वह बड़े दुःखों के पीछे प्राप्त होती है।

मतलब यह कि अगर कोई मनुष्य बड़ी मेहनत करके कहीं से कुछ धन प्राप्त कर भी ले तो वह करने योग्य काम नहीं। धन की प्राप्ति में सौ गुना दुःख उठाने पर अगर एक गुना सुख धन से मिल भी जावे तो भी ९९ गुना दुःख अधिक ही है। इसलिए वह लेश मात्र सुख भी दुःख रूप ही है या उस सुख को कुछ भी सुख न समझना चाहिए जिसके लिए इतना उद्योग या मिहनत की जावे।

शास्त्रों में लिखा है कि यदि कोई धर्म के वास्ते भी धन को इकट्ठा करना है तो वह भी बड़ी भूल में है। क्योंकि धन का इकट्ठा होना अधर्म के बिना कभी नहीं हो सकता। धन को इकट्ठा करने में जरूर कुछ न कुछ अधर्म हुआ करता है। इसलिए उस धन से किया हुआ धर्म अधर्म के बराबर हो जाता है, तो फायदा ही क्या ? कुछ नहीं। इस वास्ते ऐसा काम ही करना व्यर्थ है, क्योंकि कीचड़ के धोने से उसका न छूना ही अच्छा है। यही बुद्धिमत्ता है।

संसार में जिसके पास धन होता है, उसको डाकू आदि मारते, सताते हैं, अनेक प्रकार की सजाओं से दुःखी करते, एवं सदा डराते रहते हैं कि हम तुम्हारे धन को छीन लेंगे। मैंने इस बात को बहुत दिन तक सोचते विचारते अब समझा है कि धन की चाह करना, धन को पाने की इच्छा करना ही दुःख है।

हे काम, तू जिस जिस पदार्थ की ओर झुकता है, जिस जिस चीज़ की चाह करता है, उसी उसी

कामना करने लगता है। तू चाहता है कि अमुक चीज़ मुझको मिल जावे, तू उसी को प्राप्त करने के उपाय में लग जाता एवं उसी को पकड़ने लगता है। इसी लिए हे मूर्ख काम, तू अज्ञानी है, तू कभी सन्तोषी नहीं बन सकता, न कभी तू पूर्ण हो सकता है। तू अग्नि के समान है।

हे काम, तू नहीं समझता कि इस चीज़ का मिलना आसान है और इसका मिलना दुर्लभ।

हे काम, मैं समझता हूँ कि तू पाताल के समान कभी पूरा होने वाला नहीं है। तेरा पेट कभी न भरेगा। तू मुझे हमेशा दुःखी ही रक्खेगा।

हे काम, अब तू अच्छी तरह समझ जा कि आज से तेरा मुझ में प्रवेश नहीं हो सकता। आज से मेरे पास तू नहीं आ सकता, मेरे पास कभी नहीं फटक सकता।

बार बार इकट्ठा किये हुए धन का नाश होने से आज मैं अकस्मात् (इत्तफाक़िया) वैराग्य को प्राप्त होकर तथा संसार की चीज़ों से अपने मन को हटा कर कामों की चिन्ता को छोड़ता हूँ।

मैंने कामों के फन्दे में फँस कर बड़े बड़े दुःख सहे पर मूर्खतावश (बेवकूफी से) उस समय नहीं समझता था कि तत्त्व क्या है। ऐसी बात या ऐसी कौनसी चीज़ है जिससे मेरी कामना पूरी हो सकती है।

आज मैं अपने धन का नाश हो जाने से वैराग्यवान् होकर सुख-पूर्वक हूँ। मैं इस समय ऐसा सुखी हूँ कि मेरे शरीर के किसी भी हिस्से में दुःख नहीं है। मैं अब आनन्द-पूर्वक सोया करूँगा और आनन्द ही में मग्न रहूँगा।

प्यारे पाठक, ऐसे विचार प्रकट करना किसी साधारण मनुष्य का काम नहीं हो सकता, किन्तु ये विचार बड़े पुण्योदय के फल समझने चाहिये। मङ्कि बड़ा महात्मा एवं बुद्धिमान् था। उसके ये विचार बड़े सुखदायक हैं। वास्तव में मनुष्य को सुख कुछ भी नहीं है। वह रात दिन धन की ही चिन्ता में लगा रहता है। उसकी वासनायें कभी पूरी नहीं होती। चिन्ता में प्रसित हुए मनुष्य को कभी सुख नहीं मिलता।

काम शब्द से मङ्कि महात्मा का अभिप्राय हृदय में बसने वाली वासना—इच्छा—से है, जिसको हृदय की गाँठ या हृदय का बन्धन कहते हैं। शास्त्रों में भी इसी काम को हृदय की गाँठ बतलाया गया है। स्त्री वा धनसम्बन्धी सुख भोग की जो अगाध तृष्णा सूक्ष्म वा स्थूल रूप से हृदय में ठहरी हुई है वह बड़ी मजबूत गाँठ है। इसको हृदय से निकालने के लिए ऐसे ही प्रबल ज्ञान और वैराग्य की आवश्यकता है जैसा कि बुद्धिमान् मङ्कि को हुआ था।

महात्मा मङ्कि ने कहा कि हे काम, मैं आज सब रयों के साथ साथ तुझको छोड़ता हूँ। आज

तू मेरे पास रह सकता है और न मेरे शरीर में ही रम सकता है। आज से मैंने सब मनोरथ छोड़ दिये।

आज से मैं आक्षेप करते हुए—अंगुश्तनुमाई करने वाले मनुष्यों के ऊपर क्षमा करूँगा और जो प्राणी मुझे मारेंगे, मैं बदले में उनको न मारूँगा।

मेरे साथ शत्रुता रखने वाले जब मुझ से बुरी बुरी बातें कहेंगे तब मैं उन गाली देने वाले या कोसने वाले पुरुषों के बुरे वचनों पर, अप्रिय बात पर ध्यान न दूँगा और बदले में उनसे प्रिय वचन बोलूँगा, उनको खुश करूँगा।

आज से मैंने अपनी चंचल इन्द्रियों को अपने काबू में कर लिया है। आज से मैं जितेन्द्रिय हो गया। अब मैं सब तरह से सन्तुष्ट हूँ। मुझे किसी बात की इच्छा नहीं।

आज से अकस्मात् बिना माँगे प्राप्त हुए भोजनादि से मैं गुजारा करूँगा। हे काम, मैं तुझ शत्रु का सकाम न करूँगा, तेरी इच्छाओं को कभी पूरी न करूँगा।

हे काम, अब तू अच्छी तरह समझ जा कि मैं वैराग्य, सुख, तृप्ति शान्ति, सत्य, दम, क्षमा और सब प्राणियों पर दया को प्राप्त हो गया हूँ। अब से किसी के साथ वैर भाव कभी न करूँगा किन्तु दुश्मन को भी मैं अपना मित्र समझूँगा।

अब मैं सत्त्व गुण की ओर झुकता हूँ। अब मैं सत्त्वगुण में ही स्थित रहूँगा जिस से मेरी चञ्चलता छूट जायगी।

चञ्चलता के छुट जाने से समाहित और एकाग्र चित्त हुए मुझ को, काम, लोभ, तृष्णा, कृपणता (कंजूसी) दीनता और तुच्छता छोड़ देंगी। ये काम आदि शत्रु सत्त्व गुण के साथी कभी नहीं बन सकते। सत्त्व गुण से ये दूर भागते हैं। इन काम आदि अवगुणों के रहने का स्थान तो रजोगुण और तमोगुण ही हैं। रजोगुण और तमोगुण को अब मैं अपने पास फटकने भी न दूँगा।

इस समय मैं काम-लोभ आदि शत्रुओं को छोड़ कर सुख को प्राप्त हो गया हूँ अब मुझ को चारों ओर से सुख ही सुख दिखलाई देता है।

अब से मैं पूर्ववत् मूर्खतावश आपे से बाहर हो कर क्षोभ को प्राप्त होता हुआ दुःख न पाऊँगा।

कामों में से जो जो हिस्सा छोड़ा जाता है वह वह सुख का कारण होता है और जो मनुष्य काम के अधीन हो जाता है, काम का दास बन जाता है, वह सदा दुःख ही दुःख पाया करता है।

जो मनुष्य काम के अनुबन्ध—परिणाम—का कारण रजोगुण को हटा देता है अपने से निकाल देता है वह काम क्रोध से होने वाले दुःख, निर्लज्जता तथा ग्लानि को भी निवृत्त कर सकता है। क्योंकि कारण के न रहने पर कार्य स्वय ही नहीं होता। कारण के होने पर ही काय हुआ करता है, जब कारण का अभाव हो गया तब समझना चाहिए कि कार्य का भी अभाव ही है।

पाठक गण, देखिए, भक्तृ महात्मा ने मनुष्य के सुख का उपाय कैसी अच्छी रीति पर बतलाया है। उसने बड़े आनन्द में मग्न होते हुए ये वचन कहे हैं। अगर इसी प्रकार हम लोग भी अपने मन को अपने वश में कर लें तो भक्तृ की तरह हमारे भी संस्कार सुधर सकते हैं। हम को सुधार के लिए बड़ी सहायता मिल सकती है। जिस तरह बहुत मीठा न मिलने पर थोड़ा मीठा भी अच्छाही लगता है, मीठा ही मालूम होता है किन्तु कड़ुआ नहीं लगता, वैसे ही पूरा ज्ञान—वैराग्य के प्राप्त न होने पर थाड़ा थोड़ा ज्ञान—वैराग्य भी संसार क नाना प्रकार के दुःखों से बचा सकता है। पूरा ज्ञान न होने पर भी थोड़ा थोड़ा ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। थोड़ा थोड़ा ज्ञान बढ़ाते रहने से कभी पूर्ण ज्ञान भी हो सकता है। संसार-सागर से पार पाने के लिए—संसार के अनेक तरह के दुःखों से कुछ कुछ छुटकारा पाने के लिए—थोड़ा थाड़ा ज्ञान-वैराग्य का अभ्यास मनुष्य को अवश्य करना चाहिए। जो मनुष्य जितना ही संसार में लवलीन होगा, जितना ही अधिक अधिक संसार की चीज़ों से प्यार करेगा उसको उतना ही अधिक कष्ट अवश्य उठाना पड़ेगा और जितना संसार के पदार्थों से उदासीनता रक्खेगा जितना ही उनको न चाहेगा, उनमें प्रेम न करेगा, उतना ही उसको अवश्य सुख प्राप्त होगा। इसलिए संसारी पदार्थों में अधिक लवलीन होना मनुष्य के लिए अच्छा नहीं। सुख का साधन वैराग्य ही है।

महात्मा मङ्कि ने कहा कि जिस प्रकार गर्मी के मौसम में जल का शीत गुण (ठंढ) जलाशय की गहरी तह में नीचे चला आता है वैसे ही यह मैं ब्रह्म ज्ञान में प्रविष्ट होता हूँ। मैं इस समय शान्त हूँ। मुझ में अब जरासी भी हलचल बाक़ी नहीं रही; मुझ को केवल सुख ही सुख प्राप्त हो रहा है।

संसार में जो काम—सुख और द्यु लोक में जो स्वर्ग का बड़ा सुख माना जाता है, ये दोनों सुख तृष्णाक्षयरूप सन्तोष सुख के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं हैं। तृष्णा का नाश हो जाने पर सन्तोष होता है। सन्तोष के बराबर मेरी राय में कोई सुख नहीं ।

मैं आशा करता हूँ कि पाँच ज्ञानेन्द्रिय और छठे सब से बढ़ कर—सब से जबरदस्त दुश्मन काम को, सातवें अपने शरीर के सहित त्याग कर अविनाशी ब्रह्मपुर नामक मोक्ष पद को प्राप्त हो कर राजा के समान सुखी होऊँगा, आनन्द करूँगा।

भीष्मजी ने राजा युधिष्ठिर से कहा कि हे राजन्! ऊपर कहे अनुसार मङ्कि निश्चयात्मक बुद्धि को स्थिर करके वैराग्य को प्राप्त हो गया। वह मङ्कि सब कामों को छोड़ कर बड़े सुख वाले ब्रह्म पद को प्राप्त हुआ था। बड़े सुख के स्थान में पहुँचा था।

कैसे आश्चर्य की बात है कि दो बछड़ों के नाश के कारण मङ्कि मुक्ति दशा को प्राप्त हो गया और उस मङ्कि

पाठक गण, देखिए, मङ्क्ति महात्मा ने मनुष्य के सुख का उपाय कैसी अच्छी रीति पर बतलाया है। उसने बड़े आनन्द में मग्न होते हुए ये वचन कहे हैं। अगर इसी प्रकार हम लोग भी अपने मन को अपने वश में कर लें तो मङ्क्ति की तरह हमारे भी संस्कार सुधर सकते हैं। हम को सुधार के लिए बड़ी सहायता मिल सकती है। जिस तरह बहुत मीठा न मिलने पर थोड़ा मीठा भी अच्छाही लगता है, मीठा ही मालूम होता है किन्तु कड़ुआ नहीं लगता, वैसे ही पूरा ज्ञान—वैराग्य के प्राप्त न होने पर थोड़ा थोड़ा ज्ञान—वैराग्य भी संसार के नाना प्रकार के दुःखों से बचा सकता है। पूरा ज्ञान न होने पर भी थोड़ा थोड़ा ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। थोड़ा थोड़ा ज्ञान बढ़ाते रहने से कभी पूर्ण ज्ञान भी हो सकता है। संसार-सागर से पार पाने के लिए—संसार के अनेक तरह के दुःखों से कुछ कुछ छुटकारा पाने के लिए—थोड़ा थोड़ा ज्ञान-वैराग्य का अभ्यास मनुष्य को अवश्य करना चाहिए। जो मनुष्य जितना ही संसार में लवलीन होगा, जितना ही अधिक अधिक संसार की चीज़ों से प्यार करेगा उसको उतना ही अधिक कष्ट अवश्य उठाना पड़ेगा और जितना संसार के पदार्थों से उदासीनता रक्खेगा जितना ही उनको न चाहेगा, उनमें प्रेम न करेगा, उतना ही उसको अवश्य सुख प्राप्त होगा। इसलिए संसारी पदार्थों में अधिक लवलीन होना मनुष्य के लिए अच्छा नहीं। सुख का साधन वैराग्य ही है।

महात्मा मङ्कि ने कहा कि जिस प्रकार गर्मी के मौसम में जल का शीत गुण (ठंड) जलाशय की गहरी तह में नीचे चला जाता है वैसे ही यह मैं ब्रह्म ज्ञान में प्रविष्ट होता हूँ। मैं इस समय शान्त हूँ। मुझ में अब जरासी भी हलचल बाकी नहीं रही, मुझ को केवल सुख ही सुख प्राप्त हो रहा है।

संसार में जो काम—सुख और द्यु लोक में जो स्वर्ग का बड़ा सुख माना जाता है, ये दोनों सुख तृष्णाक्षयरूप सन्तोष सुख के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं हैं। तृष्णा का नाश हो जाने पर सन्तोष होता है। सन्तोष के बराबर मेरी राय में कोई सुख नहीं ।

मैं आशा करता हूँ कि पाँच ज्ञानेन्द्रिय और छठे सब से बढ़ कर—सब से जबरदस्त दुश्मन काम को, सातवें अपने शरीर के सहित त्याग कर अविनाशी ब्रह्मपुर नामक मोक्ष पद को प्राप्त हो कर राजा के समान सुखी होऊँगा, आनन्द करूँगा।

भीष्मजी ने राजा युधिष्ठिर से कहा कि हे राजन् ! ऊपर कहे अनुसार मङ्कि निश्चयात्मक बुद्धि को स्थिर करके वैराग्य को प्राप्त हो गया। वह मङ्कि सब कामों को छोड़ कर बड़े सुख वाले ब्रह्म पद को प्राप्त हुआ था। बड़े सुख के स्थान में पहुँचा था।

कैसे आश्चर्य की बात है कि दो बछड़ों के नाश के कारण मङ्कि मुक्ति दशा को प्राप्त हो गया और उस मङ्कि

ने काम के मूल संकल्प को जड़ से काट दिया इसी से सब से बड़े मुक्ति पद को प्राप्त हुआ।

यदि मनुष्य भर्तृ महात्मा के इस सदुपदेश पर ध्यान दे, उनके बतलाये हुए मार्ग का अनुसरण करे तो अपना बहुत कुछ सुधार कर सकता है। सुधार ही नहीं किन्तु ऐसा मनुष्य सच्चे सुख को प्राप्त हो सकता है।